

ओ३म्

पुस्तक संख्या ..... 55.6 / 12(ब)

पञ्जिका संख्या ... २३६२९

पुस्तक पर सर्व प्रकार की निशानियां लगाना वर्जित है। कोई सज्जन पन्द्रह दिन से अधिक देर तक पुस्तक अपने पास नहीं रख सकते। अधिक देर तक रखने के लिये पुनः आज्ञा प्राप्त करनी चाहिये।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

कृपया पुस्तक के ऊपर कोई निशान आदि न लगायें।

२६७२६

पुस्तकालय

गुरूकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या .... आगत संख्या 26726

पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित 30 वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए अन्यथा 50 पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्ब दण्ड लगेगा।




55.7,12 KH
26726



भारतीय जनता के हितार्थ प्रकाशित—

वास्थ्य विज्ञान पर एक भारतीय वैज्ञानिक की नवीन खोज

माधो प्रशाद

स्वास्थ्य विज्ञान पर एक भारतीय वैज्ञानिक की नवीन खोज

लेखक—माधो प्रशाद
(रायसाहब)
ए०-एम-आई-स्ट्रक्-ई (लंदन)
एफ-आर-एस-ए०(लंदन)
सिविल इन्जीनियर & साइनटिस्ट।
(रेलवे के डिवीजनल इन्जीनियर—लंबी छुट्टी पर)
(भारतीय प्राचीन वैज्ञानिक रहस्यों की खोज करने वाले)
(१६२४ में देहली की बिलडिंग-शिफ्ट करने वाले)
मोरगंज
सहारनपुर (उ० प्र०)



भूमिका लेखक—कविराज पं० जगदीश चन्द्र मिश्र आयुर्वेदाचार्य
अरोग्य-भवन रसशाला सहारनपुर




55.7,12 KH
26726

प्रकाशक

शरद्-साहित्य-सदन

सहारनपुर

लेखक के सर्वाधिकार सुरक्षित हैं ।

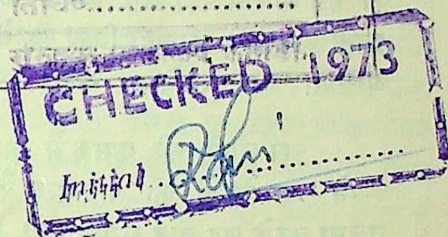
प्रथम संस्करण १९५१

मूल्य—सद् भावना

मुद्रक—वैद्य शरद कुमार मिश्र 'शरद'

हिन्दुस्थान मुद्रणालय,

सहारनपुर



वक्तव्य

प्राचीन ग्रन्थों के अवलोकन से पता चलता है कि भारतीय विज्ञान विश्व विख्यात था। ऐसे बहुत से प्रमाण हैं कि देश देशान्तर से लोग यहाँ समय २ पर विज्ञान व अन्य कलाओं की शिक्षा ग्रहण करने के लिये इस देश में आते रहे। भारतीय वैज्ञानिकों ने वैदिक काल से मनुष्य की सुख सम्पति बढाने के लिये पूर्ण रुप से प्रयत्न किया था। जिसका आधार केवल पंच तत्वों की प्राकृतिक क्रियायों की सत्यता पर ही अवलम्बित था।

मनुष्य के जीवन यापन की सर्व प्रमुख आवश्यकता अच्छा स्वास्थ्य है। जिसे प्राप्त करने के लिये वैज्ञानिकों ने भिन्न-भिन्न सिद्धान्तों एवं नियमों का प्रतिपादन किया है जो कुछ प्रकृति के नियमों के अनुकूल और कुछ प्रतिकूल नियमों पर निधारित हैं

प्रमाण के रूप में पाश्चात्य वैज्ञानिकों का मत स्वास्थ्य विकृति का मुख्य कारण विभिन्न प्रकार के कीटाणुओं द्वारा विष का फैलाया जाना है पाश्चात्य विद्वानों का यह मत केवल प्रकृति नियमों की अनभिज्ञता ही थी। और इन वैज्ञानिकों ने अपने इन लचर विचारों का इस तीव्रता से प्रचार किया कि लोगों को इस निराधार विचार को ही मानना पड़ा और भारत के स्वास्थज्ञ वैज्ञानिकों को इतना अवकाश ही नही मिला कि वे इस सिद्धान्त की सत्यता या असत्यता पर पूर्णविचार करें।

इस छोटी सी पुस्तक में लेखक ने स्वास्थ्य विज्ञान पर अपने अन्वेषणों की पाश्चात्य वैज्ञानिकों के सिद्धान्तों से तुलना करके यह बात साबित की है कि स्वास्थ्य विकृति जिन दोषो से फैलती है वह विकार केवल विभिन्न प्रकार के पदार्थों में जल वायु और अग्नि के ससंर्ग ही से उत्पन्न होते हैं और मनुष्य की अज्ञानता के कारण बढ़ कर यह महान विषोंका रुप धारण कर लेते हैं। किसी भी कीटाणु, मक्खी, मच्छर आदि द्वारा नही उत्पन्न होते।

इस पुस्तक की प्रतियाँ भारतीय विद्वानों, वैज्ञानिकों, स्वास्थ्य अधिकारी, पत्र संपादकों और विख्यात वैद्यों की सेवा में भेजी जा रही है और प्रार्थना की जारही है कि अपनी २ राय दे कर सब श्रीमान लेखक को कृतार्थ करेगें जिससे लेखक को इस पुस्तक को छपवाने और अपने अन्वेषण को आगे जारी रखने का पूर्ण साहस मिले।

फरवरी १६५१ लेखक—**माधोप्रशाद**

-❀:--:❀-

भूमिका

जन्म जन्मान्तर के सत्कर्मों का परिणाम मनुष्य शरीर सृष्टि प्रधान एवम् सर्वश्रेष्ट है यह विवाद रहित तथ्य है। इसकी सर्वश्रेष्ठता के सहस्रों कारणों में से यदि सर्व प्रधान कारण का उल्लेख किया जाय तो वह बुद्धितत्व ही होगा। यद्यपि अन्य प्राणियों में भी साधारण बुद्धि पाई जाती है। किन्तु इसका चरम बिकास मनुष्य में ही पाया जाता है तभी तो "नरत्वं दुर्लभ लोके" अथवा "जन्तूनां नर-जन्म दुर्लभम्" कह कर नरत्व को महत्व दिया है ?

प्रवृत्तिशील मनुष्य की अनन्त प्रवृत्तियों में अन्वेषण एवम् अभिव्यञ्जन नाम की दो प्रवृत्तियाँ प्रबल एवम् प्रधान है। अन्वेषणात्मक प्रवृत्ति से प्रति वस्तु के तत्व की खोज की जाती है और अभिव्यञ्जनात्मक प्रवृत्ति से खोज के द्वारा अवगत तत्व को दूसरों पर प्रकट किया जाता है। इन दोनों प्रवृत्तियों को यदि जीवन कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी क्योंकि इन प्रवृत्तियों से शून्य व्यक्ति को सहृदय समाज निर्जीव अथवा पाषाण ही मानता है।

यह अवश्य है कि अन्वेषण की दिशा समय, समाज, परिस्थिति तथा बुद्धि के अनुसार प्रति व्यक्ति के लिए भिन्न २ होती है।

अन्वेषक अपनी निश्चित दिशा पर चलते हुए अन्वेषण से ज्ञात तत्वों को लौकिक व्यवहार, व्याख्यान, छोटे छोटे लेख एवम् पुस्तकों द्वारा जनता पर प्रकट करना चाहता है एवम् प्रकट करता है इस अभिव्यञ्जनात्मक प्रवृत्ति के अधीन होकर प्रकृत निबन्ध के लेखक ने थोड़े से

वैज्ञानिक तथा जनता के समक्ष उपस्थित किए हैं। यहाँ यह बताना आवश्यक जान पड़ता है कि लेखक का चुनाव समयोचित तथा उदारभावना पूर्ण है। क्योंकि जीवन की सफलता स्वास्थ्य पर निर्भर है। स्वास्थ्य नियमों तथा स्वास्थ्य विरोधी वस्तुओं के बिना जाने स्वस्थ रहना कठिन ही नही अपितु असम्भव है। अस्वस्थ मनुष्य अपने तथा समाज के लिये भारभूत है। स्वस्थ पुरुष ही 'जीवेमशरदः शतम् , पश्येमशरदः शतम प्रब्रवाम शरदः शतम् अदीनाः स्यामशरदः शतम्'' की घोषणा का सच्चा अधिकार हो सकता है। प्राचीन भारत इस रहस्य को न केवल जानता ही था अपितु "व्यवहार कालेन'' सिद्धान्त को चरितार्थ कर मृत्युञ्जय बनने का सौभाग्य भी प्राप्त कर चुका था। परन्तु आज की भारतीय मृत्यु संख्या एवम् आनुपातिक वय के आँकड़े हमें स्पष्ट बता रहे हैं कि हम अस्वास्थ्य की चरम रेखा पर पहुँच गए हैं। ऐसी दशा में कोई भी भद्र पुरुष निस्संकोच हमें स्वास्थ्य नियमानभिज्ञ कह सकता है। इसी धारणा से वर्तमान काल में प्रकृत निबन्ध प्रतिपाद्य विषय की आवश्यकता ऊपर बताई गई है। रचयिता ने इस निबन्ध में पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु की गुण क्रिया का वर्णन करते हुए परिणामी पदार्थों के तीन परिणामों का विस्तार से वर्णन किया है। इन परिणामों के औचित्य से स्वास्थ्य एवम अनौचित्य से अस्वास्थ्य का आविर्भाव होना है। अतः इन परिणामों पर ध्यान रखने की आवश्यकता बताई है। परिणामों के अवसर पर स्वाभाविक तथा असावधानताजन्य स्थूल, तरल एवम गैस तीन प्रकार के विष उत्पन्न होते है। स्थूल विष एक देशीय होता है अतः उससे न्यून ही हानि होती है। तरल विष स्थूल की अपेक्षा अधिक स्थान व्यापी होता है। अतः द्वितीय प्रथम की अपेक्षा अधिक हानिकर है। अन्तिमविष वायु से मिलकर दूर दूर तक फैलता है इसलिए अत्यधिक हानिकर होता है। ऐसी दशा में जहां स्थूल एवम् तरल विषसे बचने के लिए सावधानी की आवश्यकता है वहां अन्तिम विषसे बचने के लिए अत्यधिक सावधानी

की आवश्यकता है। प्राकृतिक नियमानुसार भी इन विषोंका ह्रास एवम नाश होता रहता है। कीड़े, मकोड़े, तथा मच्छर इसी विष शोध के लिए उत्पन्न होते हैं। भारतीय पर्वों के अवसर पर किए जाने वाले हवन तथा बृहद यज्ञ भा इस विषनाश कार्य में सहायता पहुंचाते हैं। इन्ही बातों का विशद विवेचन योग्य लेखक ने बड़ी योग्यता से किया है। पुस्तक का आकार लघु अवश्य है किन्तु विषय पठनीय एवम् मननयोग्य है।

शरद साहित्य सदन
सहारनपुर

वैद्य जगदीशचन्द्र मिश्र
(संस्थापक 'वैद्य वाणी')

भारतीय और पाश्चात्य स्वास्थ सम्बन्धी नियमों पर तुलना-त्मक विचार ।

प्राचीन भारतीय स्वास्थ वैज्ञानिको के विचारों के अनुसार स्वास्थ नाशिक और छूत से फैलाने वाले भयानक रोगों की उत्पत्ति का मुख्य कारण विषाक्त वायु और जल का हो जाना हो या जिसकी उत्पति उस प्रकार होता है ।

१ भारतीयों को प्रकृति के अन्तर्गत चार तत्वों के सिद्धान्तों का पूर्ण ज्ञान और उन पर दृढ़ विश्वास था ।

(क) अग्नि:—इसका गुण गर्मी पैदा करना, जलाना, अपसारण करना और पृथ्वी, जल, वायु को गर्म हल्की और फैलने वाली कर के उसको ऊपर की ओर उठाना है । और उसमें जो भी दूषित पदार्थ आ जाते हैं, जिनके कारण वह विषैले हो जाते हैं, उनको उनसे रहित कर देना है ।

जल:—इसका गुण ठन्डा करना, गलाना और संकुचित करना है । यह पृथ्वी और वायु को ठन्डा, भारी और संकुचित करके उन्हें नीचे ले जाता है । और उन्हें सड़ने योग्य बनाता है । और उनमें जो विष मिले होते हैं । उनकी मात्रा और अधिक कर देता है ।

वायु:—यह क्रिया हीन होती है । और भूस्थल पर स्वच्छन्द रुप से बहती है, और अग्निके सम्पर्क में दाह क्रिया और गर्मी को

तीव्र कर देती है, तथा जल के सम्पर्क में गलाव की क्रिया और ठन्ड को तीव्र कर देती है।

पृथ्वी:—एक स्थूल पदार्थ है।

पृथ्वी:—(बानस्पति और माँसिक भाग) एक स्थूल पदार्थ है, यह वायु, जल और अग्नि के सहयोग से भूस्थल पर तथा मनुष्यों के शरीर के अन्दर अनेक प्रकार के परिवर्त्तनों की उत्पत्ति करती रहती है, जो परिवर्तन समस्त प्राणियों के जीवन पोषण के लिये नितान्त आवश्यक है। इन्ही परिवर्त्तनों से भिन्न भिन्न वस्तुओं में सहस्त्रों भौतिक कार्यों का सम्पादन होता है। उदाहारणार्थ पोटाश और लवण एक वस्तुसे दूसरी और एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाकर सबसे आवश्यक प्राणी मनुष्य की भिन्न २ आवश्यकत्ताऐं पूर्ण करते हैं। और पुन: अपने स्थान पर वापिस आ जाते हैं। यह परिवर्तन सम्पूर्ण भूस्थल पर सर्व पदार्थों में और मनुष्यों के शरीर के अन्दर भिन्न २ रूप से होते रहते हैं। संसार में ये परिवर्त्तन अति महत्व पूर्ण कार्य करते हैं। और इनके द्वारा अति विशाल भौतिक कार्यों का जो दिन प्रति दिन अनेकों खाद्य पदार्थों तथा जीवधारियों के शरीर के अन्दर होते रहते हैं, यद्यपि उनका सम्पादन पृथ्वी, जल वायु और अग्नि के संसर्ग से होता है। तोभी अपने रसायानिक क्रियाओं द्वारा जानवरों और मनुष्यों के स्वास्थ्य पर तीव्र प्रभाव डालते हैं।

(ख) ये परिवर्त्तन जिनका वर्णन हम अभी कर चुके हैं। केवल बानस्पतिक और मांसिक पदार्थ जैसे अनाज, फल, दूध, तरकारी में और मांस आदि में ही होते हैं। दुनिया में क्षीणता तथासड़ाव, गलाव भी इन्हीं परिवर्त्तनों के आधार पर होताहै। ये बनास्पतिक और मांसिक पदार्थ जो मनुष्यों के

खाद्य पदार्थ हैं। जैसे अन्न, फल, आदि तथा अन्य उपयोगी पदार्थ, छोटे २ भागों में विभाजित हो जाते हैं। इनमें से अधिकांश मनुष्य और उसके पालतू जानवर भोजन तथा चारे के रूप से प्रयोग करते हैं।

(ग) ये परिवर्तन उसी समय से आरम्भ हो जाते हैं। जिस समय से अन्न, फल आदि पेड़ से अलग होते हैं। या जिस समय से मनुष्यों या जानवरों का शरीर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

(घ) यद्यपि ये परिवर्तन प्रत्येक मनुष्य के शरीर में भी होते रहते हैं। पर वे सर्वथा भिन्न प्रकार के होते हैं। उनका वर्णन हम यहां न करेंगे। हमारा मुख्य उद्देश्य उन परिवर्तनों का, जो मनुष्यों तथा जानवरों के खाद्य पदार्थों और उनकी विष्टा से सम्बंधित है, वर्णन करना है।

(ङ) डाल से प्रथक होने के पश्चात ये नाज फल आदि तीन अवस्थाओं से निकलते हैं। यह तीनों अवस्था बड़ा महत्व पूर्ण हैं। और वे ये हैं।

अवस्था नं० १—उस समय को कहते हैं जिसका आरम्भ इन पदार्थों के डाल से अलग होने के क्षणसे होता है और जिसकी समाप्ति उसको मनुष्यों तथा जानवरों के मुख पर खाये जाने के लिये पहुँचने पर होती है। इस अवस्था को खाद्य पदार्थ को सुरक्षित रखने वाली अवस्था कह सकते हैं।

अवस्था नं० २—यह वह अवस्था होती है जो खाने के क्षण से आरम्भ होती और जब तक मनुष्य व जानवरों के शरीर में मल बन कर बाहर नहीं निकल जाती, तब तक रहती है। उसको स्वास्थिक 'अवस्था' कह सकते हैं।

अवस्था नं० ३—यह वह अवस्था है। जो मल के शरीर से बाहर निकलने के क्षण से उसके नष्ट हो जाने के क्षण तक रहती है।

जब भोजन चारा, अथवा फल बिना पूर्णतया प्रयोग हुये नष्ट कर दिये जाते हैं। तब वे सीधे अवस्था १ से ३ में आ जाते हैं। अतः प्रत्येक खाद्य पदार्थ को न्यून से न्यून दो और अधिक से अधिक तीन अवस्था से निकलना पड़ता है।

(च)—इन्हीं परिवर्तनों के कारण पदार्थ सड़ते गलते हैं और कौन सी वानस्पतिक तथा माँसिक पदार्थ की वस्तु कम से कम कितने समय तक सुरक्षित अवस्था में रक्खी जा सकती है, उसका प्रयोग में लाने वाले साधनों पर निर्भर है। अनेक कृत्रिम उपायों से मनुष्य पहली अवस्था में खाद्य वस्तुओं को सुरक्षित रखता है। दूसरी अवस्था में यह पाचन शक्ति और स्वास्थ पर निर्भर होता है और तीसरी अवस्था में यह कृत्रिम उपायों और उनको नष्ट करने के उपायों पर निर्भर है। संक्षेप में अनाज के एक दाने का भार उसके डाल से अलग होने के बाद प्रति क्षण कम होना आरम्भ हो जाता है और ऐसा उस समय तक होता रहता है जब तक उसे कोई प्राणी खा नहीं लेता और वह विष्ठा बनकर विष में परिवर्तित नहीं हो जाता अथवा वह भिन्न रूप धारण नहीं कर लेता या जब तक वह सड़ नहीं जाता। यद्यपि यह मार्ग चक्करदार है फिर भी अन्त में वह उसी पर पहुँच जाता है।

साधारणतया इस सुरक्षित रखने की अवस्था नं० १ में भी यह सड़ाव गलाव और उससे क्षीण होने की क्रिया जल, वायु और अग्नि के संसर्ग से ही बराबर जारी रहती है। इन तीनों तत्वों (जल, वायु और अग्नि) में से यदि किसी एक को भी निकाल दें तो यह सड़ाव गलाव की क्रिया तुरन्त बन्द हो जावेगी।

अवस्था नं० २ में भी इसी सड़ाव-गलाव की क्रिया को वैज्ञानिकों

से पाचन शक्ति कहा है। यह पाचन क्रिया शरीर में भली प्रकार उसी समय होती है जब यह तीनों तत्व पक्वाशय में भोजन के संसर्ग में आते हैं। पक्वाशय में तापक्रम ९८.४ फौरन हाइट होता है।

अवस्था नं० ३ में अवस्था नं० १ की तरह सड़ाव गलाव का वेग दो बातों पर निर्भर है।

(i)...विष का शरीर से निकल जाने के पश्चात नष्टग्रह तक सुरक्षित रूप में बक्स आदि के अन्दर बन्द करके रखना अथवा ले जाना।

(ii)...नष्ट ग्रह में नष्ट कर देने पर।

(छ) पृथ्वी—यह ठोस पदार्थ हैं, जिसके छिद्रों में तीनों तत्व जल, वायु और अग्नि रहते हैं।

जल:—यह तरल पदार्थ है, जिसमें पृथ्वी को छोड़ कर अन्य दो पदार्थ वायु और अग्नि रहते हैं।

अग्नि:—यह गरम पदार्थ है, जिसके छिद्रों में केवल वायु ही रहती है।

वायु:—यह सूक्ष्म और बहने वाला पदार्थ है, जिसके छिद्रों में कोई पदार्थ नहीं रह सकता।

(आकाश जो पांचवाँ तत्व है, उसका वर्णन यहां नहीं किया जाता)

(ज)—वानस्पतिक तथा मांसिक पदार्थ के सड़ाव गलाव की क्रिया केवल उसी समय आरम्भ होती है, जब वे अन्य तीनों तत्वों जल वायु और अग्नि के संसर्ग में पूर्ण तरह आ जाती है। सड़ाव गलाव की सबसे अच्छी परिस्थिति वह है जब किसी वानस्पतिक व मांसिक पदार्थ को पर्याप्त मात्रा में जल, वायु और गर्मी (५० फ० से १५० फ० तक की सीमित ताप) मिलती है। इसके लिये शरीर का ताप ९८.४ सबसे उपयुक्त होता है। यदि इन तीनों तत्वों में से एक भी कृत्रिम

उपायों से निकाल लिया जाय तो उससे सुरक्षित अवस्था पैदा हो जावेगी. और सड़ाव गलाव की क्रिया एक दम स्थगित हो जावेगी।

निम्नलिखित तीनों विधियों से वर्तमान वैज्ञानिक भी खाद्य पदार्थ सुरक्षित रखते हैं।

(i)—पानी निकाल कर अर्थात वस्तु को सुखा देने से।

(ii)- ताप निकाल कर अर्थात वस्तु को बर्फ में रखने से।

(iii)-वायु निकाल कर अर्थात वस्तु को शून्य में पहुँचा कर।

(इन तीनों विधियों क अतिरिक्त, पदार्थ को सुरक्षित रखने की एक और रसायनिक विधि भी है जिसका वर्णन हम यहां नहीं करेंगे)।

ये प्रयोग हम केवल संक्षेप में ही वर्णन करेंगे। भारतियों ने उपयुक्त तीनों क्रियाओं का निम्न रूप में प्रयोग किया है।

(i)—हरी तरकारियां धूप में सुखाकर महीनों सुरक्षित रूप में बिना सड़े गले रक्खी जाती हैं जैसे करेला, कचरी आदि।

(ii)- खाद्य पदार्थ ठन्डे स्थानों में सुरक्षित रक्खे जाते हैं।

(iii)–तेल में वस्तुऐं सुरक्षित रक्खी जा सकती हैं जैसे अचार आदि।

यह सब अवस्था नं० १ यानी खाद्य पदार्थों को सुरक्षित रखने वाली अवस्था का वर्णन किया गया, अब अवस्था नं० २ का वर्णन करते हैं।

अवस्था नं० २ में अच्छा पाजन वह है, जिसमें सड़ाव गलाव शीघ्रतम हो और यह मनुष्यो के लिये (अवस्था नं०२ में) अधिक लाभ दायक है। इस दशा में भोजन मनुष्य के शरीर में ही रहता है। यदि इस अवस्था में तीनों तत्वों में से यदि एक भी तत्व निकाल लिया जाय तो कथित अवस्था नं० १ और नं० ३ आ जावेगी और ऐसी दशा में अवस्था नं० २ में पाचन विकार स्वास्थ बिगाड़ देगा और मनुष्य की मृत्यु हो जावेगी।

अर्थात् :-प्राचीन भारतीय औषधी वेत्ताओं और वैद्यों के अनुसार तीनों तत्वों कफ, पित्त, वायु, (जल, अग्नी, वायु) में से एक भी शरीर से निकल जाने पर मनुष्य की मृत्यु हो जावेगी।

ii यदि इन तीनों तत्वों में से एक भी नियत मात्रा से कम हो गया तो बेचैनी प्रतीत होगी।

iii इन तीनों तत्वों में से किसी के भी नियत मात्रा से बढ़ जाने पर रोग पैदा हो जाते हैं और इसी दशा को स्वास्थरक्षा के लिये बचानी चाहिये।

iv इन तीनों तत्वों में से प्रत्येक तत्व यदि अपनी नियत मात्रा में है तो मनुष्य स्वास्थ्य बना रहेगा। यहि कारण है कि प्राचीन भारतीय औषधि वेत्ताओं ने रोग का कारण तीनों तत्वो (कफ, पित्त, वायु) में से किसी एक दो या तीनों का अधिक हो जाना बताया है और उसका उपचार बढ़े हुयेके बल तत्व को घटा देना है। उन्हें किटाणुओं से चिन्तित होने की आवश्यकता न रहती थी।

अवस्था नं० ३ में मनुष्यों के शरीर से उत्पन्न हुए मल त्रिषों को सुरक्षित रखना इसलिये आवश्यक है जिससे उसकी दुर्गंध न फैलने पावे और उससे स्थानीय जलवायु विषाक्त न हो सके कुछ समय बाद यह निम्न तीन रीतियां में से नष्ट कर दिया जाता हैं।

(i) गलाव, सड़ाव (विष्टा को गढ़ों में गलाने सड़ाने से)

(ii) ··· ·· ··· (विकरण क्रिया से ······ ···)

(iii) ओष्ठीकरण (दहन क्रिया से अर्थात जलाने से)

[क]—नियमानुसार जैसे ही कोई वानस्पतिक या मांसिक पदार्थ जल हवा और अग्नि के सम्पर्क में आता है वैसे ही परिवर्तन आरम्भ हो जाता और दुर्गंध की उत्पत्ति हो जाती है इस उत्पत्ति का कारण प्राकृतिक रसायनिक) नियम है। जो वानस्पतिक तथा मांसिक पदार्थ के तीनों तत्वों के सम्पर्क में आने पर तुरन्त ही आरम्भ हो जाती है

[अ]—अतः अवस्था १ और ३ में भूस्थल पर प्रत्येक स्थान पर हर समय कुछ न कुछ दुर्गन्ध निकला करती है यह जीव धारियों के शरीर में अवस्था नं० २ में भी निकलती है। जो पाचन क्रिया से पैदा होती है, अन्तर केवल यह है कि अवस्था १ और ३ में तो यह विकार पैदा करती है परन्तु अवस्था २ में यह मनुष्य के लिये पाचन क्रिया में उपयोगी होती है इन तीनों अवस्थाओं में परिवर्तन और दुर्गन्ध की उत्पत्ति स्वयं होती रहती है। अन्तर इतना है कि अवस्था नं० १ में यह परिवर्तन और उससे दुर्गन्ध मनुष्यों के लिये पूंजी का घाटा देने वाली होती है अवस्था नं० २ में मनुष्यों के स्वास्थ की वृद्धी करती है। और अवस्था न० ३ में मनुष्यों के स्वास्थ को रोग उत्पन्न करती है। यही कारण है कि खाद्य पदार्थों को सुरक्षित रखने के लिये और मनुष्यों को शरीर में पाचन वृद्धी करने के और विष को नष्ट करने के लिये नये २ साधनों का आविष्कार हुआ। जिन पर प्राणी मात्र का जीवन निर्भर है, संसार में मनुष्य के जीवन पोषण में ऊपर कही हुई तीनों अवस्थाओं का होना आवश्यक है इसके बिना मनुष्य का जीवन सम्भव नहीं और यह परिवर्तन पूर्णतया रोके भी नहीं जा सकते।

हम यह देख चुके हैं कि भूस्थल पर तीनों अवस्थाओं में प्रत्येक स्थान पर कुछ न कुछ दुर्गन्ध पैदा होती ही रहती है। अतः जहाँ कहीं भी मनुष्य रहते हैं वहाँ पर दुर्गन्ध पैदा होना निश्चित है और मानव जीवन का दुर्गन्ध उत्पत्ति से घनिष्ट सम्बन्ध है। बुद्धिमान मनुष्य इस दुर्गन्ध को अपनी बुद्धिमानी और नये २ साधनों से कम करते रहते हैं और जो कुछ भी दुगन्ध पैदा हो जाती है उसे शीघ्रता से नष्ट कर देते है। इसके विपरीत मूर्ख लोगों का न तो दुर्गन्ध उत्पत्ति पर ही वश चलता है, न इसे नष्ट करने में ही सफल होते हैं और परिणाम स्वरूप रोग ग्रसित हो जाते हैं।

[त] वह सड़ाव गलाव से उत्पन्न हुई दुर्गन्ध अपनी उत्पत्ति के

समय एक अंश वायु, जल या पृथ्वी का लेकर तीनों प्रकार की दुर्गन्ध दुर्गन्धित वायु, दुर्गन्धित जल और दुर्गन्धित पृथ्वी अत्याधिक परीमाण में पैदा करती रहती है।

[थ] सड़ाव गलाव की तीन अवस्थायें होती हैं।

(i) हलका सड़ाव (खमीर उठना) हलका सड़ाव गलाव

(ii) साधारण सड़ाव———— पूरा सड़ाव गलाव

(iii) तीव्र सड़ाव (विषाक्त सड़ाव) विष उत्पन्न करने वाला सड़ाव

[द] विष तीन प्रकार के हैं। ठोस, तरल और गैसीय जो प्रकृति के नियमों से ज्ञात मनुष्यों के प्रत्येक रोकने के प्रयत्नो को करते हुये भी प्रकृति के अखण्ड नियम के अनुकूल सदा भूस्थल पर होते रहते हैं। और इनका होना मनुष्य मात्र के लिये अति उपयोगी और परमावश्यक है।

[ध] इनमें से कुछ विष तीव्र गति के और कुछ साधारण गति के होते हैं।

[न] इन विषों की उत्पत्ति उन स्थानों पर होती है जहां मनुष्य-या उनके पालतू जानवर रहते हैं। इन्ही तीन प्रकार के मुख्य विषों से भांती भांती के अनेक विष पैदा हो जाते हैं। इन विषों से ही छूत की बीमारियां फैलती हैं।

[प] पार्थिव बानस्पतिक और मांसिक पदार्थों से अन्य तीन पदार्थं (जल, वायु, अग्नि) का संसगायक होने से अनेक प्रकार के विष निम्न प्रकार से पैदा होते हैं। इन प्रार्थिव पदार्थों में जो जल- वायु, और अग्नि पहले से ही मिली होती है उनसे भी सड़ाव गलाव की उत्पत्ति होती है। एक विशेष प्रकार के सड़ाव गलाव से किस प्रकार का विष पैदा होजाता है यह निम्न बातों पर निर्भर है।

i सड़ाब गलाब होने वाला पदार्थ किस जाति का था और किन पदार्थों से मिल कर बना था।

ii इस पदार्थ में जल, वायु और अग्नि किस अनुपात में था।

iii सड़ाव गलाव कितने समय तक रहा और उसका वेग कितने समय तक और किस तीव्रता से रहा।

iv सड़ाव गलाव के साथ २ उत्पन्न विषों को नष्ट करने का भी कोई साधन प्रयोग में लाया जाता रहा अथवा नहीं।

इससे प्रतीत होता है कि समान पदार्थों के सड़ाव गलाव जो समान-परिस्थिती में उत्पन्न हुये हों, वह एक ही प्रकार का विष अनेक स्थानों पर उत्पन्न करते हैं और उससे वातावरण भी समान प्रकार से ही दूषित होता है और समान प्रकार के रोग पैदा होते हैं।

(२)

मनुष्य के शरीर पर तीनों प्रकार के विषों (ठोस तरल गैसीय) का प्रभाव

जैसा प्रथम ही बताया जा चुका है यह विष अवस्था नं० १ में खाद्य पदार्थों को सुरक्षित रखने की अधूरी क्रियाओं से अवस्था नं० ३ में बिष और मलों का प्रथम सुरक्षित रखने फिर नष्ट करने की अधूरी क्रियाओं से और अवस्था नं० २ में शरीर की अस्वस्थ पाचन शक्ति की क्रयाओं से उत्पन्न होते रहते हैं।

अवस्था १ और ३ से पैदा हुये विष होने वाले स्थान के वातावरण के गतिमान (जल, वायु के वहन शील होने के कारण) एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुँच जाते है। वातावरण के अतिरिक्त इन विषों से कुछ पृथ्वी का अंश भी दूषित हो जाता है परन्तु यह दूषित पृथ्वी का अंश अपने दूषित प्रभाव से वातावरण थाड़े ही भाग का पभावित

करके ज्यों का त्यों बना रहता है ।

अवस्था न०२ से मनुष्य के शरीर के अन्दर पाचन क्रिया द्वारा उत्पन्न हुये विष से मनुष्य के चारों ओर का वाता वरण दूषित हो जाता है और मूत्र से नालियों का जल और विष्ठा से पृथ्वी का अंश दूषित हो जाता है सरांश यह है कि इन विषों से निम्नलित तीन वस्तुओं पर दूषित प्रभाव पड़ता है

i विष्ठा अथवा सडने वाली चीजो के ढेर पर

ii नालियो के पानी पर

iii पृथ्वी तल से स्पर्श करती हुई वायु की सतह पर लग भग १०,१५ फीट की ऊचाई तक या मकानो की १ मंजिल तक

स्थूल विषो के ढेरों से एक स्थानीय होने के कारण दुर्गन्ध को छोडकर और कोई दोष वाता वरण में नहीं आता ! नालियों का दूषित जल एक स्थान से दूसरे स्थान पर बहन शील होने के कारण इन विषों के प्रभाव को दूर दूर तीव्रता से फैला देता है परन्तु सबसे अधिक दूषित प्रभाव वायु से पड़ता है चूँकि विषाक्त वायु का प्रभावउसके अति-बहन शील होने के कारण एक स्थान से दूसरे स्थान पर बडेवेग, तीव्रता और शीघ्रता से फैल जाता है ! अतः ये विष रहने के स्थानों को दूषित कर देते है और इन का प्रभाव वाता वरण पर भी पड़ता है ! वाता वरण के ही द्वारा यह विषाक्त प्रभाव एक मकान से दूसरे मकान में स्यमं पहुँच जाता है ! प्राचीन हिन्दी तथा अरबी ग्रन्थों में भी रोगों की उत्पत्ति का मुख्य कारण वात वरण का ही विषाक्त होना माना गया है और रोगों के रोकने के उपायों में वाता वरण की स्वच्छता पर ही अधिक ध्यान दिया जाता था !

जब कोई प्राणी इन विषों से ग्रसित हो जाता है तव यह विष शरीर में अपना प्रभाव डाल देते है और पास के वाता वरण को दूषित

कर देते है ! शरीर में यदि इसी समय सड़ने, गलने की उचित अवस्था मिल गई तो यह विष और भी तीव्रता से बढ़ने लगता है ! जिस से यह शरीर के भीतरी रक्त को ही केवल विषाक्त नही करदेते परन्तु शरीर के चँहु ओर बाहर का वायु को भी विषाक्त कर देते हैं ! और यह वायु जिस जिस दूसरे शरीर को छूती है उन के भीतर भी इसी रोग की उत्पति कर देती है !

विषों की वृद्धी का यह चक्र उस समय तक चलता रहता है जब तक उस स्थान के सब मनुष्य उन विषों से रोग ग्रसित नहीं हो जाते और यह दूर तक नही फैल जाता और उस समय तक बढ़ता ही रहता है जब तक इसके रोकने के दो साधनों का प्रयोग नही किया जाता ! अथवा

i दूषित वायु की शुद्धि

ii रोगियों की उचित चिकित्सा !

४ चिकित्सा और रोकः—

[अ] रोगी चिकित्सा का हमारे विषय से असम्बन्धित होने के कारण हम उस का वर्णन नही करेगें !

[ब] दूषित वातावरण को निम्न रीति से शुद्ध किया जा सकता है

[५] प्राचीन भारतीय विज्ञानिकों के उन प्रयोगों का वर्णन करने से पहले. जिन को वे बस्तियों तथा पृथ्वी के समीपवर्ती दूषित वायु को स्वच्छ करने के हेतु काम मे लाते थे , हम उन कतिपय कार्यों का वर्णन करगें . जिसकी सफलता पूर्ण रूप से केवल भारतीय विज्ञानिकों और दर्शन वेत्ताओं के अतिरिक्त अन्य किसी ने आज तक अनुभव नही की।

यदि ये तीनों प्रकार के विष प्रकृति में यूँ ही रहने दिये जाएँ तो कुछ समय वाद प्राकृतिक साधनो जैसे धूप वर्षा तथा वायु द्वारा ये स्यंम शुद्ध कर दिये जाते हैं ! और इन में सब से अद्भुत साधन जिसे वर्तमान वैज्ञानिकों को जानना चाहिये , सहस्रो प्रकार की मक्खी मच्छर पिस्सू तथा अन्य प्रकार के कटाणु हैं जिन की सहायता से केवल

वाता वरण का ही विष नही वरन् नालियों और कूड़ों के ढ़ेरों का बहुत सा विष भी प्रकृति के अकाट्य नियम द्वारा शुद्ध करादिया जाता है !

६ भारतीय वैज्ञानिकों और दर्शन वेत्ताओं के मतानुसार सहस्त्रों प्रकार की मक्खियों, मच्छरों, पिस्सुओं और कीटाणुओं द्वारा प्रकृति विष निर्माण का काम लेती है। इसका विशेष वर्णन हम यहाँ नही करसकेंगे !

जब मनुष्य बस्तियों में अपनी अज्ञानता और अनभिज्ञता द्वारा एक या एक से अधिक प्रकार का विष उत्पन्न कर लेते हैं तथा कृतिम उपाय से अधिक मात्रा (जो बस्ती पर निभर है) में विष की उत्पत्ति रोकने में अथवा विष कम करने में असमर्थ होते हैं, जिस से आस पास की बस्ती पर विषाक प्रभाव पड़ने का डर होजाता उसी है समय प्रकृति के कीटाणु रूपी सिपाही, विष-नष्टता और भू स्थल के वायु मडंल की शुद्धता करने के लिये आ जाते हैं।

जब २ ये तीन प्रकार के विष निम्नलिखित तीन प्रकार की क्रियाओं में विषेश स्थानों में अधिक मात्रामें बढ़ जाते हैं तब २ प्रकृति भांति २ के मच्छर, मक्खी और कीटाणु आदि की उत्पत्ति उन्हीं स्थानों पर कर देती है, जिनका मुख्य उद्देश्य उन विभिन्न प्रकारों के विषों को नष्ट करना ही होता है।

क्रिया (i) अवस्था नं० १ में खाद्य पदार्थों का सुरक्षित रखने के अधूरे प्रयत्नों में !

क्रिया (ii) अवस्था नं० २ में अस्वस्थ पायन में !

क्रिया (iii) अवस्था नं० ३ में विष निर्माण के अधूरे प्रयोगों में !

इन प्रकृति के कीटाणुओं द्वारा विष दो प्रकार से नष्ट किये जाते है

(i) कीटाणु शरीर में प्रवेश करके विषों को उपयोगी पदार्थों में बदल देते हैं :

(ii) कीटाणु अपने शरीर से कुछ ऐसे रसायनिक पदार्थ उत्पन्न करके विषों में मिला देते हैं जो इन विषों को उपयोगी पदार्थों में बदल देते हैं. जैसे शहद की मक्खी भांति भांति के रसों को चूस कर मिठे शहद में परिवर्त्तन कर देती है !

हम इन कीटाणुओं के कार्यों का विस्तृत रूप से यहां वर्णन नहीं करेंगे वरन् उन्हें फिर कभी बतायेंगे ! **अतः किसी विशेष प्रकार के कीटाणुओं को किसी विशेष स्थानपर किसी विशेष समय पाया जाना यह सम्बोधित करता है कि उस स्थान पर किसी विशेष प्रकार का विष साधारण मर्यादा से अधिक मात्रा में उत्पन्न होगया है।**

साधारणतया स्वस्थ मनुष्य की नाक, एक प्रकार वायु मन्डल में विष मापक यन्त्र है! जिससे साधारणतया यह ज्ञात हो जाता है (सूंघने पर) कि किसी स्थान का विष पर्याप्त सीमा तक है या उससे अधिक हो गया है यद्यपि यह आवश्यक नहीं चूंकि बहुत से विष अधिक विषाक्त सीमा के पहुंचने पर दुरगन्ध रहित हो जाते हैं।

७ भारतीय स्वास्थ सम्बन्धी इन्जीनियरों को इन कूड़ों के ढेर, तथा नालियों के सड़े हुये पानी के इन विषों की सफाई की उतनी चिन्ता नथी जितनी उन विषों के सत्यनाश करने और उन से विषक्त हुई वातावरण की स्वच्छता करने को चिन्ता न थी ।। उन्हों ने लोगों को, इन ढेरों को, केवल शीघ्रतम नष्ट करने का आदेश दे दिया था ! उन्हें दूर के स्थानों पर जङ्गलों में लेजाकर गढ़ों में डाल कर बन्द करने का प्रयोग बतादिया था ! और जब तक घरों में रहें, बंद बरतनों

में ढक कर और कम से कम समय तक रखने का आदेश भी दे दिया था ! सबसे अधिक महत्व उन्होने विषाक्त वायु को स्वच्छता करने को दिया था जैसा कि उनका विचार था और ठीक भी था कि यह बिषेलो वायु तमाम वायु मंडल को विषाक्त कर देगी और मनुष्यों के स्वास्थ को शीघ्र नष्ट कर देगी !

भारतीय वैज्ञानिकों ने बताया है कि मनुष्य बिना भोजन ३०–४० दिन तक जीवित रह सकता है, बिना जल केवल ३०–४० घंटे ही जीवित रह सकता है परन्तु बिना वायु २०–४० सेकन्ड भी जीवित रहना दुर्लभ है ! इसके अतिरिक्त वायु एक स्थान से दूसरे स्थान को बहती रहती है और इसके विषाक्त होने के उपरान्त यदि शीघ्र ही इसका विष नष्ट करके इसको स्वच्छ न किया गया तो रोग उत्पत्ति करने वाले विष करणों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर अति शीघ्रता से फैला देता है ! यही कारण है कि भारतीय वैज्ञानिक केवल जल और वायु तथा यूनानी विद्वान आबो हवा की ही स्वच्छता पर अधिक ध्यान देते रहे। यही कारण है कि उन्होने घरों के बाहर खुले चौकों में अपने घरो में, प्रति दिन एक या दो बार अंगीठो में अग्नि जलाने और उसे कम से कम १ घन्टा जलती रहने देने के सिद्धान्त को अपनाया ! इस क्रिया को हिन्दुओं ने धार्मिक स्वरूप देकर अग्नि होत्र या हवन के नाम से पुकारा !

हम देखते हैं कि जब एक बस्ती में, एक समय में सब घरों में आग जलती है तो हर अंगीठी के उपर वायु मंडल में कुछ उंचाई तक (जो गर्मी पर निभर है) एक प्रकार का हल्की वायु या शून्य का एक स्तम्भ सा बन जाता है अगर उसमें होकर विषाक्त वायु जो कि धरातल पर मनुष्यों की बस्ती में पैदा की हुई होती है, उपर वायु मंडल में निकल जाती है और उसके स्थान को उपर के वायु मंडल की स्वच्छ वायु नीचे उतर कर ले लेती है ! और इस प्रकार सहस्रों घरो की अग्नि आस

पास की दूषिति वायु को ऊपर उठाकर ऊपर से स्वच्छ वायु नीचे उतार लाती है ! इस क्रिया से अधिकाँश दूषित वायु का विष निर्वाण भी ताप के कारण हो जाता है ! इसके अतिरिक्त अन्य पदार्थ जैसे घी, शक्कर, अन्न आदि जिनका धूम्र अनेक विषों को नष्ट करने में लाभकारी होता है, उनका भी प्रयोग साथ ही साथ होजाता है ! ये सब क्रियाएँ मनुष्य के स्वास्थ पर बड़ा प्रभाव डालती हैं और जिसकी महत्वता वर्तमान वैज्ञानिक अब धीरे धीरे समझ रहे हैं !

प्रत्येक घर में थोड़ी मात्रा में नित्य प्रति जलाने के अतिरिक्त कभी कभी विशेष विषाक्त ऋतुओं में, लोग बड़े बड़े ढ़ेरों में भी आग जलाया करते थे ! ये ढ़ेर, चौराहों पर लगाये जाते थे और ४, ६ घन्टे तक जलते रहते थे और कभी कभी और भी अधिक देर तक जलते रहते थे ! यह क्रिया किसी किसी स्थान पर प्रतिदिन, कहीं २ नियत समय पर प्रयोग में लाई जाती थी और यहाँ तक कि हिन्दुओं की होली भी एक नियत समय पर आग जलाने की इसी प्रकार की प्रथाओं में से एक है ! जिसे धार्मिक रूप दे दिता गया है और जिसमें बड़ी मात्रा में लकड़ी के ढ़ेर सड़कों के चौराहों, पर और अधिक घनी बस्तीओं में मौहल्लों के चौराहों पर जलाये जाते हैं ! और इसके धार्मिक रूप दे देने के कारण भारत वासी इसका हर स्थान पर उपयोग करते हैं ! इन ढ़ेरों में लकड़ी १२ से ३० घन्टों तक बराबर जलती रहती है ! इस सबका मुख्य उद्देश क्या है, हम निम्न लिखित पंक्तियों में विस्तृत रूप से वर्णन करेंगे !

घने बसे स्थानों में एक साथ बड़े बड़े लकड़ी के ढ़ेर जलाकर यह प्रचन्ड अग्नि उत्पन्न कर और उसे १२ से ३० घन्टों तक जलती रहने देकर उसका सबसे अधिक लाभ लेना था ! यह प्रयोग पूर्णतया स्वास्थ रक्षा सम्बन्धी है और इसे धार्मिक रूप देकर प्रति वर्ष मनाया जाता है ! यह अग्नि की सैकडों फीट उंची लपटों से वायु मंडल

की भूस्थल छूती हुई वायु की तह में एक बड़े विशाल परिमाण का शून्य अथवा हलकी वायु का स्तम्भ बन जाती है, जिसके द्वारा बहुत बड़े परिमाण में विषाक्त वायु भूस्थल पर से निकल कर ऊपर के वायु मंडल में प्रवेश कर जाती है और ऊपर की शुद्ध वायु उसके स्थान को लेने के लिये भूस्थल पर उतर आती है ! इस प्रचन्ड अग्नि के ऊपर वायु में उत्पन्न हुये शून्य के स्तम्भ में वायु बहुत हलकी हो जाती है और यही कारण है कि वह अगल बगल की, भूस्थल पर से विषाक्त वायु को अपने भीतर खीच लेती है ! फिर वहाँ पर विशेष तापलगने के कारण यह विषाक्त वायु ताप से शोधन होने के अतिरिक्त हलकी भी हो जाती है और स्तम्भ की चोटी की ओर ऊपर को उड़कर वायु मंडल में प्रवेश कर जाती है ! इन होली के सहस्रों प्रचन्ड अग्नि के, एक समय में प्रत्येक स्थान पर, जलते हुये ढेरों का परिणाम यह होता है कि बड़े से बड़े शहरों तथा बस्तिओं के अन्दर और भीतों चारों तरफ की अशुद्ध, और विषाक्त वायु भूस्थल पर इन स्तम्भों की ओर आकर्षित हो कर, स्तम्भों रूपी विशाल छिद्रों द्वारा वायु मंडल की ऊपर की तह में निकल जाती है ! और अपना स्थान वायु मंडल के ऊपर की तहों की शुद्ध वायु को दे देती है ! इस प्रकार के अग्नि के ढेर जलाकर वायु में कृतिम तीव्र गति उत्पन्न करने से, जो कई घन्टों तक वायु को भूस्थल से खीचती रहती है और ऊपर फेंकती रहती है ! परिणाम यह होता है कि बस्तियों की अनेक कोठरीयों गढ़ों, बन्द नालियों और चूहों के सूराखों तक की बन्द और विषाक्त वायु इस क्रिया से खेंच कर शुद्ध करदी जाती है और उस के स्थान पर शुद्ध वायु फेंक दी जाती है ! इस क्रिया से भूस्थल से छूती हुई वायु की तह में जिसमें बहुत सा अंश विषाक्त वायु का होता है, प्रत्येक स्थान पर शून्य के सूराख बनाकर एक प्रकार की छलनी सी बना दी जाती है जिससे शूराखों में से भूस्थल की भारी विषाक्त वायु ऊपर निकल जाती है और ऊपर की हलकी शुद्ध वायु उसके स्थान पर नीचे भेज दी

जाती है ! इन प्रत्येक स्थानों पर जलती हुइ अग्नि के ढेरों से वायु मंडल में मीलों लम्बी और मीलों चौड़ी छलनी बन जाती है जिससे शहरों और गांवों के ऊपर के समस्त वायु मंडल में हलचल पैदा कर दी जाती है और विषाक्त वायु हटा कर स्वच्छ वायु लाई जाती है !

अनेकों स्थानों पर, इस प्रचन्ड अग्नि के ढ़ेरों को जलाने की प्रथा को, वर्ष में फागुन और चैत के मास का ही नियत समय देकर, भारतीय वैज्ञानिकों ने इस महान् वायु शोधक प्रयोग में और भी चार चाँद लगा दिये और वर्ष भर में यही दो मास ऐसे होते हैं जिसमें सड़ाव गलाव, मध्यान तापक्रम होने के कारण, भूस्थल पर बहुत तीव्रता से होता है और जिसके कारण वायु मंडल अधिक विषाक्त होता है और अनेकों प्रकार के छूत सम्बधी रोगों की उत्पत्ती होती है ! जैसे चेचक प्लेग आदि ! ऐसे मध्यान ताप क्रम का वर्ष भर में एक समय और भी आता है जो क्वार, कार्तिक के मासों में पड़ता है परन्तु इन दोनों में विशेष अन्तर यह होता है कि क्वार कार्तिक में भूस्थल का वायु मंडल, ग्रीष्म ऋतु के कुछ हीं पहले व्यतीत हो जाने के कारण, इतना विषाक्त नहीं होता जितना कि फागुन, चैत में ! इसी कारण से यह वायु शोधक प्रयोग जो होली के नाम से पुकारा गया है इन बिशेष मासों में किया जाता है !

संक्षिप्त में यह, भूस्थल की विषाक्त वायु को हटाकर ऊपर की वायु मंडल की तह में फेंक देने वाला यह प्रयोग उस विषाक्त वायु को भूस्थल से हटाकर ऊपर की तहों में एक स्थान से दूसरे स्थान पर फेंक ही नहीं देता वरन् शुद्ध भी कर देता है !

८ भारतीय वैज्ञानिकों को केवल रोगों की चिकित्सा का औषधि द्वारा ही ठीक करना ज्ञात न था, वरन् भांति भांति की जड़ी बूटियां इसी अग्नि में जलाकर उनके धूम्र द्वारा मनुष्यों के स्वास्थ बृद्धी को बिधियां भी ज्ञात थीं ! ये विधियां वर्तमान वैज्ञानिकों को ज्ञात होती

नहीं जान पड़ती है परन्तु अब यह लोग भी शक्कर तथा अन्य कुछ वस्तुओं के धूम्र का लाभ कुछ कुछ जानने लगे हैं !

६ गांव वाले अपने निवास स्थानों में अलाव (सूखी पत्तियों, लकड़ियों और गोबर आदि के ढ़ेरों) में आग लगाकर आस पास की धरातल की वायु को स्वच्छ कर लेते हैं ! यद्यिपि उन्हें इस कार्य की महत्वता का ज्ञान नहीं परन्तु उनका यह वायु शोधक कार्य विज्ञान से परिपूर्ण है !

१० विषाक्त पदार्थों को नाश (छिन्न भिन्न) करना और गन्दगी को हटाना !

दो प्रकार से गन्दगी और गन्दगी से पैदा हुये विषों को नष्ट किया जा सकता है !

(i) गलाव सड़ाव से (गलाकर)

(ii) दह्न क्रिया से (जलाकर)

यह हम प्रथम ही कह चुके हैं कि वनास्पतिक और माँसिक पदार्थ अपने पैदा होने की घड़ी से अपनी नष्टता को पहुंचने की घड़ी तक और (नाज फल आदि अपने पेड़ों से अलग होने की घड़ी से नष्ट होने की घड़ी तक) न्यूनाधिक मात्रा में, गलाव और सड़ाव के प्रभाव से बराबर क्षीण होते रहते हैं और यह क्रिया जब तक बराबर जारी रहती है जब तक कि पदार्थ का संसर्ग (नियमित मात्रा मैं) जल, वायु और अग्नि से रहता है !

अतः यदि इन तीनों तत्वों मे से एक का भी संसर्ग हटा लिया जाता है तो पदार्थ के गलाव सड़ाव के प्रभाव से क्षीणता की क्रिया बन्द हो जाती है और पदार्थ शुरक्षता की गति को प्राप्त हो जाता है ! इसी नियम का लाभ उठाते हुये विदेशी विज्ञानिकों ने पदार्थों को सुरक्षित रखने के केवल तीन ही प्रयोग बताये हैं !

(i) जलका संसर्ग हटाकर

(ii) वायु का संपर्ग हटाकर

(iii) अग्नि का सपर्ग हटाकर

बनास्पतिक तथा मांसिक पदार्थ ठीक है (मांस, नाज फल, दूध आदि) कुछ अंश जल, वायु और अग्नि का पहले से ही स्थित होता है ! इससे उस प्रदार्थ में स्यंम हीं गलाव सड़ाव की क्रिया उत्पन्न हो जाती है यदि उस पदार्थ का संपर्ग बाहरी जल, वायु अग्नि से होया नहो ! गलाव सड़ाव की क्रिया से बनास्पतिक और मांसिक पदार्थ जो शक्कर, नशाश्ते, चिकनाई, चर्बी, मांसिक अंश, अनेक प्रकार के नमक और थोड़े जल की मात्रा से बने हुये होते हैं छिन्न भिन्न होकर इन पदार्थों में बदल जाते हैं ! यानी—

(i) शक्कर और नशाश्ते से ऐलकोहील, कार्बन डाईऑकसाइड़ और जल बन जाता है !

(ii) चर्बी या चिकनाई से फैटी ऐसिड़, गिल्सरीन साबुन आदि बन जाता है !

(iii) मांसिक अंश के पदार्थ से पैपटोन्स, ऐन्डोल्स, सैक्टोंल्स, ब्यूट्रिक ऐसिड, कर्वान डाईऑक्साईड़ कीथेन्स, सलफ्रेटड हाईड्रोजन और जल बन जाता है !

यह सड़ाव गलाव की क्रिया जैसा उपर बताया जा चुका है बराबर जारी रहता है जब तक कि तीनों तत्वों जल, वायु और अग्नि का पदार्थ से संपर्ग बना रहना है और जब तक तीन तत्वों में से एक या अधिक तत्व का संपर्ग पदार्थ से हटा नहीं लिया जाता !

इस सड़ाव गलाव का क्रिया को थोड़े और बन्द जलवायु की संसर्गता अति तीव्र कर देती है। और ऐसे ही ९८ डिग्री से ९९ डिग्री फैरनहाईट ना ताप क्रम अति तीव्र कर देता है। इसके विपरीत प्रवाहित और अधिक प्रमाण के जलवायु की संसर्गता गति मन्द कर देती है और एक ओर ५० डिग्री दूसरी ओर १५० डिग्री फैरनहाईट का तापक्रम भी इस गति को मन्द कर देता है।

२६६२६
पुस्तकालय २५.६
गुरुकुल कांगड़ी

अर्थात जितना तापक्रम ५० डिग्री के लगभग एक ओर और १५० डिग्री के लगभग दूसरी ओर रहेगा उतनी ही क्रिया में मन्दता रहेगी और जितना यह तापक्रम ६८ डिग्री फैरनहाईट के पास आजावेगा उतनी ही इस सडाव गलाव की क्रिया में तीव्रता उत्पन्न हो जायगी।

११ इससे यह सारांश निकला कि मनुष्यों की स्वास्थ रक्षा के हेतु भूस्थल पर निम्नलिखित नियमों का पालन होना आवश्यक है।

(क) अवस्था नं० १ में सब खाद्य पदार्थ और अन्य उपयोगी पदार्थों का, जो बनास्पतिक तथा मांसिक पदार्थों से बने होते हैं, ऐसी अवस्था में सुरक्षित रखना जिस में प्रथम तो सडाव गलाव की क्रिया का कोई प्रभाव ही न पड़ सके और यह क्रिया बिल्कुल बन्द रहे और यदि ऐसा करने का साधन मौजूद न हो तो ऐसे साधनों का उपयोग करना जिसमें यह क्रिया न्यून से न्यून हो।

(ख) अवस्था नं० २ में जो शरीर में खाद्य पदार्थों को खाकर पाचन करने की अवस्था होती है उस में मनुष्यों की पाचन शक्ति को अति उत्तम रखना जिस से पाचन शक्ति द्वारा खाद्य पदार्थ मनुष्यों के शरीरों के भीतर शीघ्र पचकर (इस अवस्था नं० २ में पाचन क्रिया गलाव सडाव की ही क्रिया का एक विशेष रूप है) उन पदार्थों में से स्वस्थ उपयोगी और रक्त पैदा करने वाला अंश शीघ्रता से शरीर में रहकर खाद्य पदार्थों का बाकी अंश विष्टा आदि के रूप में परिणित होकर शरीर से शीघ्र निकल जावे।

(ग) अवस्था नं० ३ में मनुष्यों और उनके पालतू जानवरों के शरीर से निकली हुई विष्टा आदि को इस प्रकार से सुरक्षित रखना कि वह रहने के स्थानों के वायु मंडल को विषाक्त न बना सके अर्थात या तो इनको खुली वायु जैसे जङ्गलों आदि में शरीर से निकालना और यदि ऐसा करना असम्भव हो तो घरो के भीतर इन विष्टाओं को शरीर से निकलते ही ऐसे बरतनो में बन्द करके रखना जिससे घरों के अन्दर की जलवायु पर इस गन्दगी अथवा विष्टा का कोई प्रभाव न पड

सके और यदि पडे तो न्यून से न्यून पडे और फिर इन बन्द बरतनों को दूरी पर ले जा कर शीघ्र से शीघ्र गढों में डाल कर बन्द कर देना और गलाव सडाव की प्रबल क्रिया से विष्टा को छिन्न भिन्न कर देना और ऐसे साधनों द्वारा इस क्रिया को करना कि जिसमें विष्टा का खुली वायु से न्यून से न्यून संसर्ग होता है।

यदि सम्भव हो तो विष्टा को शरीर से निकलते हीं ऐसे स्थान में डाल देना जहाँ जल वायु और अग्नि तीनों की संसर्गता इकट्ठी न हो जैसे सैनीटरी फ्लशकमोड, जिनमें वायु प्रवेश नहीं करती, इस कारण विष्टा उसके नलों में सुरक्षित रहती है।

विष्टा के गड्ढों में भी गलाव सडाव की क्रिया बडे वेग से कार्य करती है और साथ साथ ही इस विष्टा के विषाक्त पदार्थों को छिन्न भिन्न करने में कीडों की प्राकृतिक फौज पैदाहो कर अपना नियमित कार्य करती है।

(घ) इस प्रकार से १० और ११ प्रकरण में बताए हुए प्रयोगों द्वारा गन्दगी और विष्टा के विषाक्त पदार्थों का नाश (छिन्न भिन्नता मनुष्य कृत उपयोगों से जो गलाव सडाव पैदा करके पदार्थों का नाश करते हैं, किया जाता है और यह गलाव सडाव ऐसे बन्द गड्ढों में किया जाता है जहाँ बाहरी जल अथवा वायु नहीं पहुंच सकती।

(ङ) साधारणतया गलाव सडाव की क्रिया के प्रयोग से मनुष्यों की विष्टा और अन्य अनुपयोगी पदार्थों का ही नाश किया जाता है जो अवस्था नं० ३ के आरम्भ में उत्पन्न होते हैं। इस प्रयोग से अवस्था नं० १ के सुरक्षित खाद्य पदार्थों का भी नाश किया जा सकता है। जैसे नाज को सडा कर नष्ट कर देना अथवा अवस्था न० १ से अवस्था नं० ३ में एक दम परिणित कर देना और अवस्था नं २ का पैदा ही न होने देना।

१२—दूसरा तरीका नष्ट (छिन्नता, भिन्नता) करने का जलाने की क्रिया से होता है और यह विधि पूर्ण रूप से और अति वेग से

पदार्थों को नष्ट करने वाला है। यह दहन क्रिया की विधि भारत में मृतक शरीरों को नष्ट करने में प्रयोग होती रही है। इसका गन्दगी और विष्टा को नाश करने में भी बहुत से स्थानों पर प्रयोग किया जाता है। इसमें वायु मण्डल के कुछ अँशों में विषाक्त वायु जो पदार्थों के दहन से उत्पन्न होती है, फैलती है परन्तु वह शीघ्र ही नष्ट होकर वायु मण्डल में लोप होजाती है। इस दहन क्रिया का प्रयोग साधरणतया विष्टा के नष्ट करने में नहीं किया जाता इसका एक कारण यह भी है कि विष्टा खेतों और बागों के वास्ते खाद में परिणित की जाती है और दहन प्रयोग से यह खाद की प्राप्ती नहीं हो सकती जो भारत में अच्छी उपज के लिये नितांत आवश्यक है।

भाग न० १०, ११ और १२ में बताए हुए बनास्पतिक और मांसिक पदार्थों का नाश (छिन्न भिन्न) करने के दो प्रकार के साधनों के अतिरिक्त एक तीसरे प्रकार का साधन और है जो भारतवर्ष में बहुत प्राचीनकाल से प्रयोग में लायाजाता रहा है। यह साधन बहुत ही लाभ दायक, कम खर्च से होने वाला है और अत्यन्त सरल है जो गांवों जसी दूंर दूर पर बसी हुई बस्तियों के लिये तो, परमोपयोगी साधन है। इस साधन को "बिकृणता" कहते हैं। यदि यह तीसरा साधन एक प्रकार से सड़ाव गलाव के उप्रलिखित साथन का ही एक प्रकार है परन्तु हम यहां इस साधन को अति हितकारी और कम खर्च से होने के कारण एक तीसरे साधन के नाम से पुकारते हैं।

१३—इस प्रकार से बनास्पतिक और मांसिक पदार्थों को नष्ट (छिन्न भिन्द) कर तीन प्रकार के साधन होते हैं।

(i) मनुष्य कृत बन्द स्थान में गलाव सड़ाव

(ii) विकरण

(iii) दहन क्रिया या जलाना

इन तीनों क्रियाओं में दहन क्रिया से नष्ट करने के विधि सर्व श्रेष्ट है। परन्तु कुछ कारणों से इस साधन का प्रयोग एक सीमा में करना ही उपयोगी है।

१४—दो साधन अर्थात एक तो बन्द स्थान में गलाव सड़ाव पैदा कर के पदार्थ का नाश करना और दूसरा विकरण क्रिया से दूषित और विषाक्त पदार्थों का नाश करना (छिन्न भिन्न करके) यह साधारणतया मनुष्यों के लिये परमोपयोगी हैं। इन साधनों का प्रयोग देश और काल के अनुकूल निम्नलिखित नियमों के साथ करना चाहिये। शहरों की घनी बस्तियों में पहला अर्थात बन्द स्थान में गलाव सड़ाव का साधन दूसरे विकरण क्रिया के साधन से अधिक लाभदायक है। ग्रामों और छिद्रा बस्तियों में दूसरे प्रकार का अर्थात विकरण क्रिया का साधन ही अधिक हितकारी है।

(अ) साधन नं० १ (गलाव सड़ाव को बन्द स्थान में करना) में गन्दगी और विषाक्त पदार्थों का, जो साधारणतया विष्टा से उत्पन्न होते हैं, मनुष्यों के शरीरों से अलग होते ही इनको, जैसा प्रथम ही बताया जा चुका है बन्द बक्सों या बरतनों में बन्द करके अलग सुरक्षित स्थानों में एक या दो घन्टे रख लिया जाता है और फिर वहां से शीघ्र से शीघ्र विष्टा के गढ्ढों में जो बस्तियों से दूरी पर होते हैं, लेजाकर उनमें खालि कर दिया जाता है। जिस से उनके अन्दर की दूषित वायु बाहर निकलकर वायु मण्डल को दूषित न कर सके।

(ब) साधन नं० २ (विकरण क्रिया में) शरीर से निकलने वाली विष्टा और अन्य दूषित पदार्थ जिनमें तीनों प्रकार के अर्थात स्थूल, तरल और गैसीय पदार्थ होते हैं जैसे मल मूत्र गन्दी वायु आदि, इनको शरीर से निकाल कर बड़े पृथ्वी' जल और वायु के ढ़ेरों में मिला दिया जाता है जहां पर वह अति न्यून मात्रा में विषाक्त होने और एक अधिक परिमाण के ढ़ेर में मिलने के कारण अधिक परिमाण के ढ़ेरों को दूषित नहीं बना सकते और थोड़े ही समय (कुछ क्षणों में ही) प्राकृतिक नियमों के अनुसार उन में न्यून मात्रा में रहने वाले विष का नाश स्वयं ही होजाता है इस विकरण क्रिया से भूस्थल की पृथ्वी की

वायु अथवा जल दूषित नहीं होते। इसका एक कारण यह भी है कि यह विष्टा और इस से विषाक्त जल, वायु उत्पन्न होते ही वायु मण्डल की खुली हवा या नदियों के बहते हुए जल या भूस्थल के जङ्गलों की विशाल स्थलों में मिला दिये जाते हैं। इन विषाक्त पदार्थों का परिमाण अति न्यून होता है जिसका प्रभाव विशाल परिमाण वाले खुली वायु में रहने वाले पृथ्वी स्थल. जल और वायु पर कुछ नहीं पड़ता और जो थोड़ा बहुत पड़ता भी है उसका नाश स्वयं ही शीघ्र ही हो जाता है और इसी कारण से मनुष्यों के रहने वाली बस्तियों का वातावरण बिल्कुल शुद्ध बना रहता है।

यह अति न्यून मात्रा में मिलने वाले विषाक्त पदार्थ प्राकृतिक साधनों द्वारा (वर्षा, धूप, वायु, दरियाओं के जल के प्रवाह आदि से शुद्ध होता रहता है यथा शक्ति कीड़ों की फौज द्वारा भी शुद्ध कर दिया जाता है।

यह साधन नं० २ का प्रयोग केवल छिदी बसी हुई बस्तियों और ग्रामों में ही हो सकता है, घनी बसी हुई बस्तियों वा शहरों में नहीं।

१५—प्राचीन भारतीय वैज्ञानिकों और स्वास्थ सम्बंधी इन्जीन्यरों के बताये हुये कुछ स्वास्थ्य रक्षा स्म्बंधी नियम।

(क) बस्तियों के और उनके पड़ौस में विषाक्त पदार्थों का जो साधारणतः मनुष्यों और उनके पालतू जानवरों के मूत्र विष्टा और अन्य दूषित पदार्थों की, जो उनके शरीर से निकलते रहते हैं, उत्पत्ति को रोकना अथवा कम करना।

(ख) विषाक्त पदार्थों की उत्पत्ति हो जाने पर उन को शीघ्र से शीघ्र पैरे १३ और १४ में तीन प्रकार के नाश करने के साधनों में से किसी भी प्रकार के साधन से नष्ट (छिन्न भिन्न) करना। दहन क्रिया से

विषाक्त पदार्थों को जिन में विशेषतः स्थूल पदार्थ ही होते हैं किसी प्रकार की प्रज्वलित अग्नि में जला दिया जाता है।

इन में दहन के साधनों को छोड़ कर बाकी जो दो प्रकार के साधन अर्थात [(i) बन्द स्थान में सड़ाव गलाव करना और (ii) विकरण क्रिया से दूषित पदार्थों का नाश करना है] उन दोनों प्रकार के साधनों का हम निम्नलिखित पंक्तियों में विस्तार पूर्वक वर्णन करेंगे चूंकि यही दो प्रकार के साधन हैं जिनका प्रयोग जनता को सरल और हितकारी है।

(i) दहन दूषित पदार्थों और कूड़े के ढ़ेरों को अग्नि द्वारा जला दिया जाता है।

(ii) **गलाव सड़ाव**—बन्द स्थान में सड़ाव गलाव के साधन में प्रथम विष्टा और अन्य दूषित पदार्थों को शरीर से अलग होने पर तुरन्त ही सर बन्द बक्सों या वरतनों में जिनमें से वायु निकल न सके बन्द कर लिया जाता है और उनको विष्टा के गढ्ढों में जो बस्तियों से कुछ हो दूरी पर जङ्गलों में होते हैं, लेजाकर उनमें डालकर बन्द कर दिया जाता है।

यदि विष्टा को बस्तियों से बाहर इन सरबन्द बक्सों या वरतनों द्वारा विष्टा गढ्ढों में लेजाना किन्हीं कारणों से न किया जासके (जिनमें अधिक खर्च होने का कारण एक है, बस्तो का वहुत घना और जङ्गलों से दूर होना दूसरा कारण है और अज्ञानता का कारण तीसरा है।) तो बस्तियों में ही सरबन्द पक्के होज़ बना कर सड़ाव गलाव की क्रिया से विष्टा का नाश (छिन्न भिन्न) किया जा सकता है जिनका प्रचार भी आधुनिक काल में बहुत बढ़ता जा रहा है। यह मल शोधक हौज बनाने में गन्दी हवा को वायु मंडल

में निकालने वाले नलों का लगाना परमावश्यक है। यह ऊंचे से ऊंचे मकानों की छत से भी ऊंचे लेजाये जासकते हैं।

यद्यपि यह बस्तियों में मल शोधक हौज़ बनाने का प्रचार प्राकृतिक नियम के विरुद्ध है परन्तु हम इसपर भी टीका टिप्पणी न करके केवल इतना अनुरोध अवश्य करेंगे कि जहाँ भी ऐसे मल-शोधक हौज़ बस्तियों में बनाये जावें यह पक्की मोटे सीमेंट की दीवारों के होने चाहिये। इनमें जल शोषण शक्ति कदापि किञ्चित मात्र भी न होनी चाहियें और इनकी हवा बिल्कुल बन्द होनी चाहिये गन्दी हवा के नल पूरी आवश्यकतानुसार ऊंचाई के लगाने चाहियें और इनसे जो नालियें निकलें, उनमें मुड़ा हुआ मुंह अवश्य लगाया जावे। यदि ऐसा न किया गया तो इस से अति हानि होगी और इस से बस्तियों का वातावरण शीघ्र ही दूषित बन जावेगा।

विष्ठा को इन बन्द हौजों या मल शोधक हौजों में डालकर जो कम घनी बस्तियोंके भीतर ही मकानों के फ़रशों के नीचे बानये जाते हैं, नष्ट करने की प्रथा, आधुनिक वैज्ञानिकों ने आरम्भ की है, आधुनिक काल में बहुत प्रचलित है। इस क्रिया में विषाक्त पदार्थों का नाश कीड़ों की उत्पत्ति करके उनके द्वारा ही किया जाता है और इस क्रिया से बन्द हौजों में सड़ाव गलाव इस तीव्रता से उत्पन्न कर दिया जाता है कि शीघ्र ही प्रकृति को अपने नियमानुकूल वहाँ पर लाखों कीड़े उस विष्ठा को शीघ्र नष्ट करने के लिये उत्पन्न करने पडते हैं। इस कारण घरों में रहने घुसने वाले मनुष्यों के स्वार्थ हित में यह परमावश्यक है कि इन बन्द हौजों में से किसी मात्रा में भी विषाक्त वायु घरों में न निकल जावे वरन् परिणाम उलटा होगा! साधारणतया सफ़ाई में निम्नलिखित नियमों का पालन करना चाहिये।

(क) विष्टा की उत्पत्ति होते ही उसको बन्द बक्सों में जिनसे घरों की हवा का संसर्ग न हो बन्द कर लिया जावे।

(ख) इन बन्द विष्टा के बक्सों को दूर जङ्गल में विष्टा गढ्ढा में ले जाकर खाली कर दिया जावे।

(ग) उन विष्टा के गढ्ढों को जिनमें विष्टा बक्सों से ड़ाली गई है मोटी मिट्टी की तह ड़ाल कर, ढ़क दिया जावे जिस से उसका भूस्थल की वायु से कोई संसर्ग न रहे।

(घ) जहाँ विष्टा के नष्ट करने के लिये, पक्के हौज बस्तियों में घरों के नीचे फरशों में बनाये जावें वहाँ पर यह हौज पक्की दीवारों के हों जिन मे जल सोखन शक्ति कदापि न हो और इन हाजों के मुंह हर समय बन्द रक्खे जावें जिससे विषाक्त वायु का संचार न हो। सके! और इनके भीतर विषाक्त वायु निकलने के लिये इन हौजों की छतों में वायु बन्धित नल लगाये जावें जिनसे हौजों की विषाक्त वायु भूस्थल को मनुष्यों के स्वाँस लेने की वायु की तह से अलग रहती हुई वायुमंडल के ऊपरकी तह में विचलित हो जावे!

(iii) विक्रुण क्रिया में मनुष्य और उसके पालतू जानवरों की विष्टा और अन्य दूषित पदार्थ ज्यों ही शरीर से अलग होते हैं उनको पृथ्वी जल और वायु के अथाह समुद्रों स्थूल विष्टा को विशाल जंगलों में जल को विशाल नदियों में, तालाबों में और वायु को भूस्थल की वायु मंडल में) में मिला दिया जाता है और वहाँ पर प्राकृतिक साधनों से शुद्ध होने के लिये छोड दिया जाता है! विषाक्त पदार्थों की मात्रा न्यून होने के कारण उससे बस्तियों के वातावरण पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पडता जैसे ०४ फी सदी तथा कार्बन डाईऔक्साईड वायु मंडल में मनुष्यों के स्वास्थ पर कोई दूषित प्रभाव उत्पन्न नही करती! सइ साधन

का प्रयोग ६५ प्रति सैकडा मनुष्य करते हैं यद्यपि इसकी उच्चयता के महत्व का अनुभव बहुत कम वैज्ञानिकों को है।

इस साधना के बल पर हम केवल इतना कह कर इस विषय को छोड देते हैं कि ग्रामो में पक्की नालियें और पक्के मल शोधक नल स्वास्थ के नियमो के विरुद्ध होंगे ! एक छप्पर से ढके हुये ग्रामीय मकान का जिसमें फरश भी कच्चा हो, थोडी मात्रा में मल मूत्र की दुर्गंधी से वायु इतनी दूषित नहीं बनती जितनी एक शहरी पक्के मकान की जिसका फर्श भी पक्का सीमैन्ट का हो ! बन जाती है।

भारतीय विज्ञान के नियमो के मतानुसार शहरी पक्के मकान में साधन नं० १ अर्थात मल मूत्र या विष्टा को एकत्रित करके बन्द स्थान में सड़ाव गलाव की क्रिया का प्रयोग करना ही उपयोगी है और ग्रामीय कच्चे मकान में इसके बिपरीत विकृण क्रिया का प्रयोग करना ही अति लाभकार है !

अलिखित विषाक्त पदार्थों की उत्पत्ति को कम करने और उपस्थित विषाक्त पदार्थों का नाश करने की क्रियाओं के अतिरिक्त निम्नलिखित क्रियाओं के प्रयोग द्वारा भूस्थल के वातावरण की शुद्धि करना स्वास्थ सम्बन्धी नियमो की पूर्ती के हेतु परमावश्यक है।

भूस्थल पर मनुष्यों के शरीरों और उनके पालतू जानवरों के शरीरों से पैदा हुय विषाक्त पदार्थों में जो तीन प्रकार के होते हैं स्थूल (जैसे विष्ठा), तरल (जैसे मूत्र) और गैसीय (जैसे गन्दी वायु) ! भाँति २ की बिमारियें पैदा करने में स्थूल पदार्थ इतने हानिकारक नहीं होते जितने तरल और गैसीय पदार्थ अर्थात जल और वायु ! गन्दा जल इतना हानिकारक नहीं होता जितनी गन्दी वायु हानिकारक होती है।

विष्टा जैसे स्थूल पदार्थ भी स्थूल होने के कारण अपना विषाक्त प्रभाव एक विशेष स्थान पर परिमित करके रखते हैं ! तरल पदार्थ जैसे गन्दा जल (नालियों का सडा हुआ पानी) भी प्रवाह गति के कारण अपने विषाक्त प्रभाव को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाता है। यदि यह गन्दा जल एक स्थान में एकत्रित हो तो फिर प्रभाव एक देशी ही रहता है गन्दी वायु हर समय गतिवान और प्रवाह शील होने के कारण सब से अधिक हानि उत्पन्न करती है और न केवल अपने ही विषाक्त प्रभाव को एक स्थान से लेजाकर दूसरे स्थान में फैलाती है वरन् अनेक गंदे स्थूल और तरल विषाक्त पदार्थों के संसर्ग से जहाँ वह बहती है, अनेक प्रकार के विष शोषण करके अपनी प्रवाह गति द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाती है और वहाँ पर अच्छे वातावरण को भी दूषित कर देती है ।

इस काण जहाँ यह परमावश्यक है कि स्थूल और तरल विष्टा के ढेरों का शीघ्र नाश (छिन्न भिन्न) करने में कोई न्यूनता नही रहनी चाहिये वहाँ यह भी परमावश्यक है कि देश और काल के विचार से वायु की शुद्धि करने पर अधिक से अधिक ध्यान दिया जावे ! इन वायु की शुद्धि करने के साधनों का प्रयोग, विशेषतः उन स्थानों में करते रहना चाहिये जहाँ वायु में विषाक्त पदार्थों के मिश्रण होने की अधिक सम्भावना है जैसे तराई और आसाम प्रदेश के भाग ! ये प्रयोग विशेषतः उन मौसमों में करने चाहिये जिनमें वायु मण्डल का साधारण तापक्रम एक ओर ५० और दूसरी ओर १५० से चलकर ६८० फै० के लग भग पहुंचता है ! जैसे क्वार कार्तिक में एक वार और फागुन चैत के मासो में दूसरी बार पहुंचता है !

दूषित वायु अथवा जल को, जो रुके हुवे बन्द स्थानों पर विषाक्त वायु इकट्ठी हो जाने से अथवा जल इकट्ठा हो जाने से बन जते हैं, मनुष्य कृत क्रियाओं से शुद्धि कर देनी परमावश्यक है !

आधुनिक वैज्ञानिकों और स्वास्थ्य सम्बन्धी इन्जिनयरों के विचारानुसार महामारियों और फलने वाली बीमारियों के प्रमुख कारण

१ इन वैज्ञानिकों का अटल विश्वास है कि प्रत्येक बीमारी छूत के कारण ही फैलती है जिसको उत्पन्न करने का मूल कारण छोटे छोटे कीटाणु और बैक्टीरिया होते हैं ?

(क) हर एक बीमारी के अलग अलग कीटाणु होते हैं जो मनुष्यों के महान शत्रु हैं और मनुष्यों पर हमला करके अनेकों बीमारियां फैलाते हैं ! ये कीटाणु ही स्वयं प्रत्येक बीमारी का कारण हैं ! विशेषतः कीटाणु प्लेग, हैजा, इनफ्लूइन्जा, कोढ, डिपथीरिया, मियादीबुखार, तपेदिक, कालीखाँसी और कई और भयकर बीमारियों के होते हैं !

(ख) ये कीटाणु भाँति भाँति के रूप आकार और परिमाणों के होते हैं और एक दूसरे के स्वभाव में भी नहीं मिलते ।

(ग) ये कीटाणु विषाक्त पदार्थों से मनुष्य और जानवरों के मल और विष्टा और अन्य गन्दगियों से उत्पन्न होते हैं !

(घ) ये कीटाणु स्वयं विषाक्त होते हैं और मनुष्य के शरीर पर धावा करके रक्त की नालियों में चले जाते हैं और वहाँ घुस कर वह रक्त को विषाक्त बना देते हैं और प्रत्येक प्रकार की बीमारियों का विष शरीर में फैला देते हैं जिससे मनुष्य उन्ही बीमारियों का जिसके वह कीटाणु होते हैं रोग ग्रसित हो जाता है !

(ङ) ये कीटाणु साधारणतया तीन प्रकार के होते हैं
(I) वैसीली — जो लम्बे और गोल आकार के होते हैं

(II) कोलाई — जो गोलाकार ही होते हैं ;

(III स्परीला — जो साँकल के आकार के होते हैं !

बैसोली दो प्रकार के, कोलाई पाँच प्रकार के और स्परीला दो प्रकार के होते हैं ! इन सब नौ प्रकार के कीटाणुओं की आकृति और आकार एक दूसरे से नहीं मिलता !

खाने के स्वभावानुकूल भी कीटाणु तीन प्रकार के होते हैं !

(I) पैरे साईट — जो जिवित जानवरों के शरीरों में होते हैं !

(II) स्प्रोनाईट — जो जानवरों की विष्ठा में पाये जाते हैं !

(III) प्रोटो ट्रोफिक - यह एक विशेष प्रकार का कीटाणु है जो अन्य प्रकार के बनास्पतिक विषाक्त पदार्थों में पाया जाता है !

रहन सहन के स्वभावानुकूल कीटाणु दो प्रकार के होते हैं !

(i) वे कीटाणु जो वायु की अनुपस्थिती में जीवित रहें !

(ii) वे कीटाणु जो वायु की अनुपस्थिती में जीवित न रहें !

कार्य स्वभावानुकूल कीटाणु दो प्रकार के होते हैं !

(i) वे कीटाण जो मनुष्यों के शरीर में पहुँच कर एक स्थान पर जम कर बैठ जाते हैं और वहीं से शरीर के अनेकों भागों में विष बनाकर भेजते रहते हैं जसे जख्मों के कीटाणु !

(ii) वे कीटाणु जो शरीर के सब भागों में फैल जाते हैं जैसे प्लेग के कीडे, कोढ के कीडे !

(च) उत्पत्ति और बृद्धि— यह इस तीव्र गति से होती है कि केवल १० ही घंटो में एक कीटाणु से बीस लाख कीटाणुओं की उत्पत्ति और बृद्धि हो सकती है !

(छ) स्थान — ये कीटाणु पृथ्वी, जल और वायु में एक सा मिलते हैं !

२—ये कीटाणु किस प्रकार से बीमारियाँ फैलाते हैं।

(क) प्लेग का कीटाणु एक फुदकने वाला कीडा फ्ली (Flea) है जो सब प्रथम चूहों पर हमला करता है फिर चूहे इन कीटाणुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते हैं और बीमारी को फैलाते हैं !

(ख) हैजे के कीटाणु प्राय: हैजे के रोगी के शरीर और उसकी विष्ठा से उत्पन्न होते हैं और वे खाद्य पदार्थों के द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान को फैल जाते हैं ! मक्खियाँ हैजे के कीटाणुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाती हैं चूंकि मक्खियाँ हैजे के रोगी की विष्ठा आदि पर बैठती हैं वहाँ से हजारों कीटाणु इन मक्खियों की टाँगो से चिपक जाते हैं और इन मक्खियों के साथ ही चले जाते हैं ! जब ये मक्खियाँ दूसरे स्वस्थ मनुष्यों के खाने के पदर्थों पर बैठती हैं तो इन की टांगो से हैजे के कीटाणु उतर कर खाने के पदार्थों पर चिपट जाते हैं और जो फिर इन खाद्य पदार्थों को खाता है उसके शरीर के भीतर भी हैजे के कीटाणु साथ साथ चले जाते हैं और स्वस्थ शरीर को भी विषाक्त बना देते हैं ! शरीर में जाकर लाखो की तादाद में यह कीटाणु थोडे से ही समय में बढ जाते हैं !

(ग) इन्फ्लूइञ्जा के कीटाणु वायु द्वारा फैलते हैं !

(घ) मियादी बुखार के कीटाणु ?

(ङ) डिपथीरिया के कीटाणु ?

(च) तपेदिक के कीटाणु ?

३ मलेरिया ज्वर मच्छरों से फैलता है ?

(क) भारतवर्ष में करीब १५० प्रकार के मच्छर होते हैं !

(ख) इनमें से केवल ३७ प्रकार के मच्छर मलेरिया ज्वर फैलाते हैं

(ग) ये मच्छर अण्डे, पानी की सतह पर देते हैं।

(घ) ये मच्छर मनुष्यों के शरीर पर बैठ कर काट लेते हैं और अपने मुख से एक काँटे के द्वारा अपने शरीर से विष मनुष्य के शरीर में प्रवेश कर देते हैं जहाँ जाकर विष मनुष्य के रक्त को विषाक्त कर देता है और मलेरिया ज्वर की उत्पत्ति कर देता है।

४ फैलने वाली बीमारियों की रोक थाम और इलाज

(क) इन रोगों की चिकित्सा हमारे विषय से सम्बन्धित नहीं है अतः हम उसका वर्णन नही करेंगे !

(ख) रोगो का फैलना प्रत्येक प्रयोगों और विधियों से उनके कीटाणु का नाश करके किया जा सकता है ! कीटाणुओं का नाश करते समय उन बडी प्रकार के दूसरे कीडों और जानवर को भी नष्ट कर देना चाहिये जिनके द्वारा इन रोगो के कीटाणु एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुँचते हैं या पहुँचने का भ्रम भी हो जो निम्नलिखित कुछ दृष्टान्त से विदित होगा !

(i) प्लेग के कीटाणुओं को जो एक फुदकती हुई मक्खी (FLEA) के प्रकार होते हैं और जो भूस्थल से एक या सवा फुट से अधिक ऊंचे नहीं पहुंच सकते हैं, और चूहों पर हमला करते हैं इन्ही चूहों के द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान में ले जाये जाते हैं और इसी कारण से प्लेग का भयंकर रोग विस्तार से फैलता है ! इस कारण यह परमावश्यक है कि प्लेग के कीटाणुओं की नष्टता के हितार्थ इन चूहों को सर्व प्रथम नष्ट किया जावे ! इनको नष्ट अनेकों प्रयोगों द्वारा किया जा सकता है ! चूहों के मृतक शरीर या तो दूर के जङ्गलों में पृथ्वी में गड्ढे खोद कर दबा दिये जावें या जला दिये जावें !

५५.६
१२(७) पुस्तकालय
गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय
विषय संख्या ______ आगत नं० 26721
लेखक ______
शीर्षक ______

दिनांक	सदस्य संख्या	दिनांक	सदस्य संख्या

ों के वमन और
सहस्रो छोटे २
लाती हैं और
कीटाणु मक्खि-
!

हैं जिससे मले-
ष्यों को काट लेते
है और इससे

न किसी प्रयोग
हों अथवा किसी
ा (F.U.T.) ड़ी.
निक काल में बहुती
कता हो तो किसी
र उसीसे जितने

प उद्देश्य और कार्य
के कीटाणुओं का

ा और कलों का
शत्रुओं का नाश

—०:(०।।०):०—

दिनांक	सदस्य संख्या	दिनांक	सदस्य संख्या

हैं और अपने
के शरीर में
ाक्त कर देता

इलाज

नहीं है अतः

के काटा ए
करते समय
ष्ट कर देना
दूसरे स्थान
[illegible]

(FLEA) के
धिक ऊंचे नहीं
के द्वारा एक
से रोग क
श्यक है कि
र्व प्रथम नष्ट

किया जावे ! इनको नष्ट अनेकों प्रयोगों द्वारा किया जा सकता है ! चूहों के मृतक शरीर या तो दूर के जङ्गलों में पृथ्वी में गड्ढे खोद कर दबा दिये जावें या जला दिये जावें !

(ग) मक्खियाँ हैजे और अन्य इसी प्रकार की बीमारियों के बमन और विष्ठा पर बैठती हैं और वहाँ से अपनी टांगो के ऊपर सहस्त्रो छोटे २ कीटाणुओं को जो इस विष्ठा में स्थित होते हैं चिपटा लाती हैं और जब दूसरे स्थानों पर खाद्य पदर्थों पर बैठती है तो वह कीटाणु मक्खियों की टाँगो से उतर कर खाद्य पदार्थों पर चले जाते हैं !

ये मच्छर अपने भीतर एक प्रकार का विष रखते हैं जिससे मलेरिया ज्वर उत्पन्न हो सकता है और जब ये मच्छर मनुष्यों को काट लेते हैं तो इनका विष मनुष्यों के शरीर में प्रवेश हो जाता है और इससे मलेरिया ज्वर की उत्पत्ति हो जाती है।

इन्ही कारणों से मक्खियों और मच्छरो को किसी न किसी प्रयोग से नष्ट किया जाना चाहिये यदि वह प्रयोग रसायनिक हों अथवा किसी तीव्र गन्ध के विकृण द्वारा किये जाते हों जैसे लिफ्ट या (F.U.T.) डी. डी. टी (D .D. T) के तरल पदार्थों का प्रयोग आधुनिक काल में बहुती प्रचलित है ! यदि कोई और प्रयोग तत्काल न हो सकता हो तो किसी डन्डे में एक छोटा सा टुकडा जाली का बांध कर इसीसे जितने मक्खियां मच्छरों का नाश हो सके, करना चाहिए।

हर वैज्ञानिकों या स्वास्थ सम्बन्धी इन्जिनियरों का मुख्य उद्देश्य और कार्य मक्खियों, मच्छरों, चूहों और अन्य सहस्त्रों प्रकार के कीटाणुओं का जो बीमारियें फैलाते हैं. नाश करना होना चाहिये।

आज कल के बहुत से वैज्ञानिक ऐसे ऐसे प्रयोग और कलों का आविष्कार करने में लगे हुये हैं जिनसे इन मनुष्य के शत्रुओं का नाश किया जा सके।

—o:(o||o)o:—

--:कीटाणु सिद्धान्त का एक संक्षिप्त इतिहासः—

भिन्न २ बीमारियों तथा महा मारियों के फैलाने का कारण कीटाणु के होने का सिद्धान्त सर्व प्रथम १८४६ ई० से डा० काहन ने माना और फिरसन् १८५० ई० में डा० डारविन ने माना और सन् १८७६ ई० में डा० कौश ने जोर दे कर इस सिद्धान्त को एक बार फिर दुनिया के सामने रक्खा।

सर्व प्रथम सन् १८४६ ई० में डा० कनाह और सन् १८५० ई० में डा० डारविन, जो दोनों विदेशो यूरोप के रहने वाले थे उन्होंने कीटाणुओं का बीमारियों को फैलाने का सिद्धान्त दुनिया के आगे रक्खा और यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया किसी भी छूत की फैलाने वाली बीमारियों का मुख्य कारण उस बीमारी के कीटाणु होते हैं परन्तु उस समय के अन्य डाक्टरों भारतीय वैद्यों. हकीमों और स्वास्थ्य वैज्ञानिकों ने इस सिद्धान्त की ओर किंचित मात्र भी ध्यान नहीं दिया।

दूसरी बार १८७५ ई० में डा० कौश जो एक जर्मन वैज्ञानिक थे, उन्होंने फिर दुनिया के आगे यही कीटाणुओं का कुछ बीमारियों का, कारण होने का सिद्धान्त रक्खा और यह प्रमाणित करने की घोषणा दी कि जिन कीटाणुओं को उन्होंने बीमारों के रक्त, थूक, और विष्ठा आदि में पाय था वही उन बीमारों की उत्पत्ति करने के मूल कारण हैं। इस सिद्धान्त के उपर उस समय भी बहुत से वैज्ञानिकों से डाक्टर कौश के वाद-विवाद हुये। अन्य वैज्ञानिकों का कहना था कि कीटाणु जो बीमारों के रक्त और विष्ठा में उत्पन्न हो जाते हैं वे रोग का परिणाम

हैं कारण नहीं। डाक्टर कौश ने इसके ऊपर पांच प्रमाण देकर अपने सिद्धान्त की पुष्टि की और इसके फल स्वरूप लोगों ने सन् १८८० ई० में इस सिद्धान्त को मानना आरम्भ कर दिया।

गन्दगी को नष्ट करने के आधुनिक साधन उपाय

विधि नं०— १

(क) आधुनिक साधन जो मनुष्यों को विष्टा को और अन्य विषाक्त पदार्थों को नष्ट करने के प्रयोग में लाये जाते हैं वे वहुधा विष्टा के गढ्ढों में इसको बन्द करके गलाव सड़ाव की क्रिया ही है। यानि अनेक स्थानों पर इसको विशेष अंगोठियों द्वारा जलाया भी जाता है और कुछ स्थानों में पक्के हौजों में डाल कर सड़ा भी दिया जाता है।

(ख) टट्टी घरों में से विष्टा की भरी बालटियां इकट्ठी कर ली जाती हैं और ऊपर से उनके मुंह बन्द करके रख दी जाती हैं।

(ग) वहां से ये विष्टा भरी हुई बालटियाँ गाड़ियों द्वारा विष्टा के गढ्ढों में, जो शहरों से कुछ ही दूरी पर बनाये हुये होते हैं, ले जाया जाता है और वहां उनमें से विष्टा उन गढ्ढों में पलट दी जाती हैं और तब उन गढ्ढों में मट्टी की एक तह भी डाल दी जाती है इन गढ्ढों में यह विष्टा गलाव सड़ाव की क्रिया से सड़ कर खेतों में देने वाली खाद में स्वंम परिणित हो जाती है।

विधि नं० २—

इस विधि में विष्टा को केवल दहन कर दिया जाता है।

विधि न० ३ --

इस विधि में विष्टा को फ्लशिंग कमोड़ों FLUSING COMMOODES और चीना के बड़े बडे नलों के द्वारा पानी मिला कर बहा दिया जाता है और किसी एक स्थान पर सब विष्टा को एक बड़े हौज में एकत्रित करके

छान लिया जाता है छने हुये जल को या तो नालियों में बहा दिया जाता है और या खेतों आदि की सिंचाई आदि में दे दिया जाता है या खाद के प्रयोग में ले लिया जाता है।

यह विधि यदि देखा जावे तो विधि नं० १ का ही एक विशेष रूप है। अन्तर केवल इतना ही है कि विधि नं० १ में विष्टा बालटियों द्वारा भेजी जाती है और विधि नं० ३ में यह नलों द्वारा बहा कर ले जाई जाती है।

विधि नं० ४—

इस विधि नं० ४ में विष्टा को एक पक्के हौज में पानी मिला कर डाल दिया जाता है और वहां पर इसको सड़ने दिया जाता है। यह सड़ाव गलाव की क्रिया तीव्र वेग से इन हौजों में हुआ करती है, और कीड़ों की फौज के सहयोग से सब स्थूल विष्टा नष्ट कर दी जाती है। विषाक्त गैस लम्बे २ नलों से निकाल कर वायु मण्डल में फैलाई जाती है और जल नालियों में बहा दिया जाता है।

विधि नं० ५—

इस विधि में विष्टा जल में मिला कर कच्चे गहरे गढ्ढों में डाल दी जाती है-इसका जल विधि नं० ४ के विरूद्ध पृथ्वी में शोषित हो जाता है और स्थूल विष्टा सड़ाव गलाव की क्रिया से कीड़ों को खिला कर नष्ट कर दी जाती है। यह कच्चे हौज ऊपर से बन्द करके रक्खे जाते हैं।



तीसरा प्रकर्ण

पाश्चात्य वैज्ञानिकों के कीटाणु सिद्धान्त का निर्णय

[१] पीछे लिखा हुआ पाश्चात्य वैज्ञानिकों का यह कीटाणु सिद्धांत (पृष्ट ३१ से ३८ तक) कि बहुत सी फैलने वाली बीमारियों का विष विभिन्न प्रकार के कीटाणुओं द्वारा उत्पन्न किया जाता है सर्वथा निमूल है। इतना अवश्य सत्य है कि भूस्थल पर जहाँ २ और जब २ जल, वायु और पृथ्वी पर विषों की उत्पत्ति शीघ्रता से होती है और जहाँ साधारण वायु वृष्टि, ताप क्रम आदि उन विषों का शोधन नहीं कर सकते वहाँ प्राकृतिक नियमानुकूल विभिन्न प्रकार के विचित्र आकृति और स्वभाव वाले कीटाणु उस विष में स्वयं उत्पन्न होजाते हैं और उन कीटाणुओं का काम उस विष का विनाश करना होता है नकि उस विष की उत्पत्ति करना।

भूस्थल पर विषोत्पत्ति केवल मनुष्य और उसके पालतू जानवर करते हैं और विष विनाश विभिन्न प्रकार के कीटाणु करते हैं।

विष जैसा पीछे पृष्ट १ से ३० तक में कई बार बताया जा चुका है कि मनुष्यों की दिनचर्या के विभिन्न कार्यों में जहाँ २ पार्थिव (बनस्पतिक और मांसिक) पदार्थों का जल-वायु और अग्नी से एक साथ संसर्ग हो जाता है वहाँ २ विष की उत्पत्ति होनी प्रारंभ होजाती है और लगातार होती रहती है और यही विष बढ़ कर असीम महत्व धारण कर लेता है और यदि इसकी उत्पत्ति के साथ २ उसका

बिनाश नहीं किया जाता तो फिर यह विष मनुष्यों के स्वास्थ्य और कभी कभी जीवन को भी हानि पहुंचा देता है।

[२] पाश्चात्य वैज्ञानिकों के सिद्धान्तानुकूल यह जल वायु और पृथ्वीको दूषित करने वाले विष कीटाणुओं के शरीरों से उत्पन्न होते हैं और यह कीटाणु इन विषों का कारण हैं। लेखक के मत से यह जल वायु और पृथ्वी को दूषित करने वाले बिष अन्य प्रकार यानो उपरि लिखित कारणों से उत्पन्न होते हैं और कीटाणु इन विषों को नष्ट करने के हेतु उत्पन्न होते हैं।

हम भी विभिन्न प्रकार के कीटाणुओं का अस्तित्व बिषाक्त पदार्थों और बीमार मनुष्यों के शरीरों में उसी प्रकार से मानते हैं जिस प्रकार पाश्चात्य वैज्ञानिक हम भी उन में से कितने ही कीटाणुओं के शरीरों के किसी २ हिस्सों में विशेष प्रकार का विष मानते हैं परन्तु फिर भी हम यह मानने के लिये तैय्यार नहीं कि यह कीटाणु मनुष्य स्वास्थ्य को हानि पहुंचाने के लिये बिषोत्पत्ति करते हैं। ऐसा होते हुए भी यह कीटाणु मनुष्य स्वास्थ्य के विपरीत कोई काम नहीं करते बल्कि जितने कार्य करते हैं वे विष विनाश करने के हेतु करते हैं। इसके लिये हम बिस्तारपूर्वक वर्णन आगे करेंगे।

कीटाणुओं की क्रियायें और उनकी सत्यता

[३] प्राकृतिक नियामानुकूल भूस्थल पर कीटाणुओं की सहायता प्रकृति उसी समय करती है जब मनुष्य और इसके पालतू जिनावरों कृत बिषाक्त पदार्थों का परिमाण एक विशेष मात्रा से ऊंचा चला जाता है और जबकि साधारण धूप वायु और वृष्टि की क्रिया से वह विष एक नियत समय में

छिन्न भिन्न नहीं होता दिखाई देता।

(अ) भिन्न २ प्रकार और आकृति वाले अनेक भाँति की शक्ल सूरत और स्वभाव वाले कीटाणु भूस्थल पर तीनों प्रकार के स्थानों में यानी जल पृथ्वी और वायु में तत्काल उत्पन्न कर दिये जाते हैं या बाहर से भेज दिये जाते हैं यह एक विचारणीय प्राकृतिक आश्चर्य है और यह नीयम वैज्ञानिकों की कोटी से बाहर है। एक प्रकार के विष में एक ही आकृति या बनावट के एक ही सूरत आकृति वाले कीटाणु होते हैं दूसरी आकृति के नहीं होते। हम अपनी दूसरी पुस्तक में जो आगे लिखेगें बहुत कुछ इस बारे में बताने का प्रयत्न करेगें कि कीटाणुओं की शक्ल सूरत बनावट आदि उनके कार्यों के ऊपर निर्भर होतीं हैं।

(इ) यह विशेष प्रकार के कीटाणू एक बार एक स्थान में उत्पन्न हो कर वहाँ से कदापि नही हटते जब तक कि वहां के विष विनाश कार्य पूर्णतः समाप्त नही कर लेते चाहे वह कितनी ही देर में हो प्रथम तो इतनी बड़ी तादाद में कीटाणु उत्पन्न किये जाते हैं जिस से विष विनाश कार्य शीघ्र समाप्त हो फिर भी इसका हिसाब प्रकृति स्वयं ही रखती है मनुष्य का हस्तक्षेप नही। केवल एक ऐसी दशा है जिस में यह कीटाणु उस विष के स्थान को अपने नियत समय से पहिले छोड़ देते हैं और वह दशा जब होती है जब कि बीच में ही किन्ही भी मनुष्यकृत या मनुष्य रचित प्रयोगों या औषधियों से वह विष पूर्णतः नष्ट कर दिये जाते हैं। विष के साफ हो जाने पर वह कीटाणु रोकने से भी नही रुकते।

(उ) विष क्षेत्र से हट कर यह कीटाणु विष विनाश होने पर उस स्थान से यातो जीवित दूसरे स्थान पर चले जाते हैं या वही

मर जाते हैं।

(क) यह कीटाणु किसी न किसी रुप में उसी विष को अपनी खूराक बना कर खा डालते हैं और या अपने शरीर से कोई ऐसा विशेष प्रकार का रस निकालते हैं जिसके विष में मिलने पर वह विष शोधित हो जाता है।

(ख) पहिले विष की उत्पत्ति होती है फिर कीटाणु उत्पन्न होते हैं या बाहर से आते हैं।

(ग) मनुष्य के रहने के स्थानों में कीटाणुओं मक्खियों मच्छरों आदि का बढी हुई तादाद में पायाजाना यह संबोधित करता है कि उस स्थान के वाता वर्ण (वायु,जल) में विष की मात्रा नियतमात्रा से अधिक बढ़गई है।

[४] पाश्चात्य वैज्ञानिकों के निदान और चिकित्सा दोनों ही कीटाणुओं की क्रियायें और उनकी सत्यता पर (जैसा पिछले पैरे नं ३ में वर्णन किया गया है) अधिकांश निर्भर है और चूंकि इन प्रयोगों का आधार कीटाणुओं की क्रिया की प्राकृतिक सत्यता पर है इस कारण इन प्रयोगों में १०० प्रतिशत सफलता होती है और इन प्रयोगों से ये पाश्चात्य वैज्ञानिक बिना नाड़ी परीक्षा आदि के भी निदान केवल कीटाणुओं की शक्ल और सूरत मिलाने से ही कर लेते हैं और सही कर लेते हैं यह प्रयोग पश्चात्य वैज्ञानिकों का बहुत सराहनीय है और दुनिया के मानने योग्य है इन से यह न समझना चाहिए कि भारतीय निदान विधियें या चिकित्सा विधियें इन पाश्चात्य वैज्ञानिकों द्वारा प्रचलित की गई विधियों से कम सराहनीय है। भारतीय शरीर वैज्ञानिक केवल नाड़ी परीक्षा आदिसे ही जैसा पीछे वर्णन किया जा चुका है एक मिनट भर में ही मनुष्य के बीमार शरीर का यह पता लगा लेते थे कि शरीर में जल

वायु अग्नि (कफ, वात, पित्त) में से कौन सा पदार्थ बढ़ा हुआ है या एक से ज्यादा कौन से पदार्थ इन तीन में से बढ़े हुए हैं फिर वे भारतीय वैज्ञानिक उन बढ़े हुए पदार्थों को कम करने की औषधि तुरन्त देकर उनको नियत मात्रा में कर देते थे और इससे अधिक कीटाणुओं आदि के चक्कर में न पड़ते थे।

पाश्चात्य वैज्ञानिकों के निदान और चिकित्सा के सिद्धांत

(i) निदान--प्रथम तजुरबे कर २ के इन पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने हर प्रकार के बीमार मनुष्यों के शरीरों से थोड़ा सा रक्त या रस निकाल कर खुर्दबीन के शीशों से बड़ी सावधनी से निरीक्षण कर करके नोट करलिया कि कौन २ से विष में कौन २ प्रकार और किस २ आकृति के कीटाणु मौजूद होते हैं। (इस बात से थोड़ी देर के लिये कोई सम्बन्ध नहीं कि वे कीटाणु विष में क्या क्रिया कर रहे थे) उन्हों ने अपनी इन खोजों के नतीजों को बडी सावधानी से लिख लिया कि मलेरिया ज्वर के बीमार के रक्त या रस में बम्बई पुलिस की वर्दीदार सिपाही थे प्लेग के बीमार के रक्त या रस में पंजाब पुलिस की वर्दी वाले सिपाही थे और हैजे के बीमार के रक्त या रस में बंगाल पुलिस की वर्दी के सिपाही थे। उसके उपरांत जब भी कोई बीमार निदानार्थ आया निदान परीक्षार्थ उसके शरीर में से एक बिंदु रक्त या रस को लेकर उसको खुर्दबीन से इस बार फिर देखा कि उस में कौनसी शक्ल सूरत के कीटाणु मौजूद दिखाई पड़ते हैं। उन को देखकर तुरन्त यह बता दिया कि बीमार के रक्त में किस प्रकार का विष मौजूद है या यह कि बीमार का क्या रोग है।

इस परीक्षा का आधार पीछे बताई हुई कीटाणुओं की क्रियाओंकी सत्यता पर है।

(ii) चिकित्सा—इसी प्रकार से दूसरे प्रयोग द्वारा एक विशेष विष के कीटाणुओं पर कई प्रकार की औषधियें बारी बारी से डाल कर देखा जाता है कि यह कीटाणु किन किन औषधियों से पोषण होते हैं और बढ़ जाते हैं और किन औषधियों के लगाने से निर्बल हो जाते हैं या मर जाते हैं। जिन औषधियों से निर्बल हो जाते या मर जाते हैं वही उस मर्ज़ की औषधि मान ली जाती है और ठीक भी है। इसका आधार भी कीटाणुओं की क्रियाओं की सत्यता पर है।

इन निदान और चिकित्सा की विधियों का केवल दिग दर्शन करा देना ही लेखक का ध्येय था इस से अधिक नहीं।

जहाँ तक निदान और चिकित्सा का सम्बन्ध है इस में कीटाणुओं को विषों का कारण या कार्य होने से कोई अन्तर नहीं पड़ता चाहे वे कारण हों, चाहे कार्य, इस लिये यह दोनों विधियाँ पाश्चात्य वैज्ञानिकों की इस भेद के कारण न दोषी हुई और न ही कर्म करने से बाधित हुई। परन्तु जहां तक स्वस्थता (पृथ्वी, जल, वायु की शुद्धी) सम्बन्ध है वहां पर पूर्ण प्रकार से विष का विनाश न किया जा सकेगा जब तक इस बात का भली भांति पूर्णतः निर्णय न हो जाय कि क्या यह किटाणु पाश्चात्य वैज्ञानिकों के मतानुसार विषोत्पत्ति के कारण हैं या लेखक के मतानुसार विषोत्पत्ति के कार्य हैं। यदि किसी छोटी सी कोठरी की अशुद्ध या विषाक्त वायु को शुद्ध करना ही केवल ध्येय होता तो संभव था कि ऊपर बताई हुई मनुष्य शरीर वाली निदान और चिकित्सा की विधियें इस पर

लागू करली जाती। परन्तु ऐसा नहीं है। जंगलों को छोड़ते हुए बसे हुए मनुष्यों के रहने वाले स्थानों की भी लंबाई चौड़ाई और ऊंचाई बहुत ज्यादा होती है जहां की अशुद्ध वायु या अशुद्ध जल या पृथ्वी स्वच्छ और शुद्ध करनी होती है। इन सब कारणों से यह बात स्पष्ट है कि सावधानी से और दलीलें पेश की जावें। जिनसे भारतीय जनता को इस बात का यथार्थ ज्ञान हो जावे कि क्या यह पाश्चात्य वैज्ञानिकों की सौ वर्षों खोज किसी अंश में ठीक भी है या बिल्कुल असत्य है। लेखक के मत से यह बिल्कुल असत्य है।

[५] भूस्थल पर प्रकृति के नियमानुकूल छोटे से छोटे और बड़े से बड़े कीटाणु, मक्खी, मच्छर और यहां तक कि बड़े से बड़े जानवर भी मनुष्यों के प्रति एक ही सा व्यवहार रखते हैं और वह व्यवहार है सेवा और मित्रता। यदि कुछ वैज्ञानिक इन को शत्रु भाव से देखते हैं तो यह भूल है चूंकि मैं इस मजमून पर भविष्य में दूसरी पुस्तक लिखूंगा इस पुस्तक में अधिक इसके बारे में मैं कुछ नहीं लिखूंगा-कहना अब यह था कि मक्खी मच्छर और बड़े कीड़े मकोड़े भी प्रकृति के उसी प्रतिबन्ध में बन्धे हुऐ हैं जिस में प्लेग, हैजे या दूसरी बीमारियों के कीटाणु कीड़ों पर रहते होंगे उदाहरण के रूप में आइये मक्खियों पर कुछ तजुरबे कर डालें आशा है कि जो नतीजा मक्खियों के तजुर्बे से निकलेगा या निकलता हुआ प्रतीत होगा उसे आप कम से कम सब छोटे २ कीटाणुओं के उपर लागू मानलेंगे। मानने की न लेखक को कोई जिद है और न ही आपको न मानने की ही कोई खास जिद प्रतीत होती है केवल सत्यता की खोज लेखक को वैसी ही है जैसी आप को। अच्छा हो होगा यदि और कुछ हाल मालूम होजावें।

(i) मक्खियों का घरों में कोई भी सभ्य पुरुष बढ़ना पसंद नहीं करेगा। सब यही चाहते हैं कि यह कम होजाये बिलकुल न हों और यदि हों तो इतनी कम हों कि दिखाई न दें। क्योंकि इनका दृष्य ही एक अस्वच्छता का संकेतन है। अब रही यह बात क्या यह संभव है कि मक्खियाँ घरों में घटकर इतनी कम हो जावें जितनी से हम विचलित न हों विशेषत: हमारे अपने शहर सहारनपुर के समान तरी वाले शहरों में कदापि नहीं, ऐसा होना सर्वथा असम्भव है क्योंकि वातावरण की सफाई का भारभी प्रकृति ने अपने ऊपर स्वयं लेरखा है और प्रकृति किसी की राय या सलाह को सुनने या मानने के लिये तैयार नहीं है और न यह अपने नियमों के पालन में किसी भारतीय वैज्ञानिक की सुनती है और न ही पाश्चात्य वैज्ञानिक की। वही करने का आदेश अपने कीटाणु दल या मक्खियों और मच्छरों को देती है जो प्राकृतिक नियमों पर निर्धारित हैं और जैसा देश और काल होता है, उसी के अनुकूल कार्य किया जाता है। यदि पृथ्वी स्थल पर और वायु मंडल या नज़दीक के भरे हुये जल के कुडों में काफी परिमाण में विष की मात्रा मौजूद है तो मक्खियों की तादाद हरगिज कम न रखी जावेगी केवल उतनी ही रहेगी जितनी की आवश्यकता है। यदि लेखक चाहे जब कम न होंगी और पाश्चात्य वैज्ञानिक चाहे जब कम न होंगी। यदि डी० डी० टी० की वर्षा करना आरम्भ करदें तब भी कम न होगी (कुछ थोड़े समय के लिये कम हो जायेगी जब तक उसी रसायणिक औषधि का वायु मंडल या पृथ्वी पर असर रहेगा फिर असर के कम होते ही उतनी ही हो जायेगी। इसमें एक बात नोट करने वाली यह है कि डी० डी० टी० या चाहे जौनसी औषधि प्रयोग में लाई जावे। यदि इससे मक्खियां थोड़े समय के लिये भी हटानी हों तो

औषधि ऐसी होनी आवश्यक है। जिससे उस विष की सफाई भी साथ २ ही हो जाये जिसको साफ करने के लिये मक्खियां उस स्थान पर इकट्ठी हुई हैं। क्योंकि उनका असल ध्येय विष है जिसके लिये मक्खियाँ इकट्ठी हुई हैं। ये वालन्टियर फौजी सिपाही हैं। जो इतने कटिबद्ध सिपाही हैं कि मरने की परवाह नहीं करते, ड्यूटी पर कार्य क्षेत्र में मरना या इनको कार्य पूरा करना है यदि एक चौथा व्यक्ति जाली दार डंडे से मारना आरम्भ करदे तो भी कम न होगीं। सारांश यह है कि कम जभी होंगी जब कार्य की पूर्ति हो जावेगी। यह विष विनाश होते ही स्वयं चली जावेंगी और कहीं दृष्टि से बाहर जाकर अनजान जगह छिप जावेंगी।

(ii) अब दूसरा उदाहरण भी लीजिये एक बेचारी बीमार और लाचार गरीब स्त्री के बालक जिसको वह स्त्री कई कारणों वश कई दिनों से स्वच्छ नहीं कर सकी और उसके नाक के नीचे ऊपर ओष्ठ पर कुछ मैल नाक द्वारा बह कर सूख सा गया हो (थोड़े समय के उपरांत लेखक के मतानुसार उस मल में वायु मंडल की जल वायु और अग्नि (उष्णता) के संसर्ग से गलाव और सड़ाव की क्रिया का प्रारंभ हो जाना है।

अब उस बच्चे की नाक के ऊपर मक्खियाँ आनी शुरू हो जाती हैं और (चूंकि प्रकृति का नियम शीघ्रता से स्वच्छता उत्पन्न करना है) बढ़ती चली जाती हैं, जहां तक कि उस सड़ने वाली वस्तु पर बैठकर उसकी सफाई करने की गुंजायश रहती है। इस बीच में इन मक्खियों को उस बच्चे की मां उड़ाती है फिर भी वह नहीं हटतीं और हट २ कर फिर बैठ जाती हैं जब मल की ओष्ठ से पुर्णतः सफाई हो जायेगी

तो फिर सब मक्खियाँ वहाँ से चली जावेंगी और यदि कोई बुलाए भी तो एक भी नहीं आवेगी दूसरी बात इस उदाहरण में यह समझने से सम्बन्ध रखती है वह यह है कि कितने हलके वजन की मक्खी होती है और इतने हलके वजन की होते हुऐ भी इसके पैरों में एक लोहे की पिन से भी अधिक ताकत होती है सूखे मल को त्वचा से खोद कर खा लेती है। एक और बात भी यहां पर बतला देना चाहते हैं वह यह है कि यह मक्खियां काफी बदबूदार मल या विष्टा को भी खा कर फिर उन में या उनकी विष्टा में कोई विशेष असाधारण बदबू नहीं आती यदि आप तजुरबा करना चाहते हों तो एक साफ स्वच्छ कंच की शीशी में इन मक्खियों को भर के सूंध सकते हैं या कोई और प्रकार का तजुरबा कर के देख सकते हैं कि कितनी ग़िलाज़त उसके शरीर पर लिपटी है। जो वैज्ञानिक पाश्चात्य वैज्ञानिकों के कुछ करे हुए तजुरबों के नतीजों को प्रमाण में पेश कर के यह समझ रहे हों कि जनता अब भी पहिले की प्रकार उनकी उल्टी सीधी कहानियों में उलझ जायगी मैं उन को सलाह देना चाहता हूँ कि वे अपना समय थोड़ा सा प्रकृति की इस विचित्र कारीगिरी की निम्नलिखित मात्राओं के सोचने में अवश्य लगावें और लेखक की दूसरी पुस्तक की इन्तजार करें।

(अ) मक्खी के उपर की खाल कितने अंश में पानी को न शोधन करने वाली होती है।

(इ) कितने अंशमें मल को मक्खी अपने परों और पैरों द्वारा चिपका कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाती हैं।

(उ) मकखी के विष्टा में किस प्रकार की बदबू होती है और

(क) यह विष्टा किस प्रकार का विष वायु मंडल में फैला ने की सम्भावना रखती है।

इन प्रश्नों के यतार्थ उत्तर आने पर लेखक अन्य कीड़ों और जानवरों के बारे में कुछ प्रश्न करेगा जैसे मछली और सूअर के विष्टा आदि के बारे में।

(iii) अब हम मक्खी का तीसरा उदाहरण देते हैं वह यह कि एक मनुष्य जो आस्तान दार कमीज़ पहिने हुऐ है उसकी बांह में एक छोटी सी फुन्सी होकर पक जाती है और उस में मवाद पड़ना आरंभ हो जाता है तब एक मक्खी उस मनुष्य की बाँह के ऊपर चलते फिरते फुन्सी पर बैठने का प्रयत्न करती है और वह मनुष्य उसको बारम्बार उड़ाता है, मक्खी अकेली ही है परन्तु बैठने की हर बार कोशिश करती है। दो घंटे बराबर मनुष्य और एक मक्खी की लड़ाई में इसी तरह बीत जाते हैं। क्या आप कह सकते हैं कि आखिर जीत किस की होगी? क्या हम कह सकते हैं कि मक्खी की?

अब आप इन मक्खी के तीनों उदाहरणों में से किसी एक में भी यह कह सकते हैं कि पहिले से विष (मल) मौजूद था या मक्खी—लेखक की दृष्टि में तोनों में पहिला कारण यानी विष मौजूद था और मक्खी जो कार्य है उस विष के अस्तित्व में आने के बाद गई या लेजाई गई--

मक्खी की भांति हर कीटाणु के क्रिया क्षेत्र में भी यह प्रतीत होने से नहीं रहता कि पहिले विष या मल का अस्तित्व होता है और उसके उपरान्त आवश्यकता पड़ने पर विष विनाश करने वाले को "कारणाभावे-कार्या भावे"

कारण के अभाव करने से कार्य का अभाव स्वयं हो जाता है। इन तीन उदाहरणों को समझ लेने के बाद आप स्वयं इस बात का निर्णय करें कि स्वास्थता और स्वच्छता के हेतु किसी विषाक्त स्थान से विष निवारणार्थ क्या आप सब से प्रथम उस विष की सफाई करेंगे या सब से पहिले पाश्चात्य वैज्ञानिकों की सुझाई हुई विधि के अनुकूल मक्खियों को डी-डी-टी या अन्य छिड़कने की औषधियों द्वारा या केवल जाली बंधे हुए डंडे से मार २ कर वहां से हटा देना पसंद करेंगे और ऐसा करने से क्या आप सन्तुष्ट हैं कि विष उस स्थान से मक्खियों के मरने के साथ २ ही हट जाता है।

हम भी यह नहीं कहते कि मक्खियों या मच्छरों को पाला जावे या जरूरत पर न माराजावे परन्तु हम इस अन्धाधुन्द बिना सोचे विचारे एक तरफा मार करने वाले स्वास्थ्य हितैषी सज्जनों को खबदार कर देते हैं कि ऐसा करना व्यर्थ है हमें कार्य वह करना चाहिये जिससे कुछ तातपर्य निकले। आधुनिक काल में पाश्चात्य देशों की बातों को हमारे अभागे देश में अनुचित महत्व देने का कुछ अभ्यास सा पड़ गया है।

(६) अब इस पुस्तक को विस्तारवृद्धि से रोकने के कारण मक्खी को छोड़ कर अन्य कीटाणुओं या बड़े कीड़े मकौड़ों या उससे भी बड़े जानवरों की विचित्र लीलाओं का उल्लेख जो वे सेवा और मित्र भाव से और सब से अधिक प्रकृत्ति की नियम बद्धता से मनुष्य के प्रति करते हैं इस पुस्तक में नहीं करेंगे-समय मिलने पर दूसरी पुस्तक में लिखेंगे उसी पुस्तक में यदि आवश्यक समझा गया तो डा० कौश की सन् १८७६ में दी हुई पांच दलीलों के भी जवाब देंगे।

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

यहाँ पर अन्त में जनता के सूचनार्थ संक्षेप में थोड़ा सा विवरण लेखक की कीड़ों और जनवरों के सम्बन्ध में उन पांच बातों का किया जाता है जिन को लीडिन के डाक्टर हैगन-होज़ ने अपनी उदार विज्ञान से २५ सितम्बर १६५० में ज्यों की त्यों माना है और लिखा है।

डा० हैगन होज नीदरलैंड के एक सुप्रसिद्ध व्यक्ति हैं जो World Leaugue for the protection of ainmals के प्रधान हैं यह लीग पिछले ही साल से स्थापित हुई है और ७१ देशों के विद्वान इस में सम्मिलित हैं डाक्टर महोदय लिखते हैं कि –

(७) "बड़े हर्ष के साथ मेरी काँग्रेस की कौन्सिल के मैम्बरों ने आपकी खोजों को जो आपने जानवरों और काटाणुओं के बारे में की हैं मान लिया है—हमारा भी दृढ़ विश्वाश है भूस्थल पर हर जानवर (कीड़े मकोड़े इत्यादि) एक न एक अत्यन्तावश्यक प्रकृति का कार्य करता है और वह काम उस के लिये नियुक्त किया हुआ कार्य होता है यद्यपि हम अपनी खोज से बहुतसों के बारे में जान सकते हैं परन्तु फिर भी ऐसे बहुत हैं जिन के बारे में कुछ नहीं जाना जासकता है"

यह वक्तव्य डा० हैगनहोज़ महोदय ने लेखक के ३० अगस्त १६५० के पत्र के जवाब में भेजा है इस पत्र में लेखक ने अपनी पांच खोजों का वर्णन किया है। हम विस्तार वृद्धी को रोकने के कारण अपने पत्र में लिखी हुई खोजों का केवल सूक्ष्म रूपसे थोड़ासा व्यौरा देकर लेखको समाप्त कर देते हैं पूरे पत्र की नकल हम अपनी दूसरी पुस्तक में देंगे लेखक के ३० अगस्त १६५० के पत्र की कुछ बातें यह हैं :—

सब कीड़े मकोड़े मक्खी मच्छर और कीटाणु आदि भूस्थल पर मनुष्यों की सेवा हितार्थ प्रकृति के नियमबद्ध होकर विभिन्न और विचित्र क्रियायें करते हैं।

इन से प्रकृति भिन्न २ प्रकार के काम लेती है मनुष्यों ने अपनी अनभिज्ञता के कारण इनमें से बहुत सों को जो स्वास्थ्य रक्षा और विष—विनाश का कार्य करते हैं। उनको मनुष्यों के शत्रु के नाम से सम्बोधित कर डाला है। मनुष्यों का न्याय मनुष्यों के लिये ही परिक्षित बना लिया है। इन कीड़े मकोड़े और कीटाणुओं के लिये बना हुआ मालूम नहीं होता।

मक्खियें मनुष्य के रहने के मकानों की सफाई करने वाला सब से ज्यादा काम करने वाला सैनीटरी महकमे का सिपाही है जिसको प्रकृति तुरन्त ही रहने वाले घरों के जलवायु और पृथ्वी के विषाक्त हो जाने पर डीवटी पर लगा देती है और विष विनाश करती है।

संयमी मनुष्य अपने घरों की सफाई स्वयं करते हैं और इन प्रकृति के सिपाहियों से ज्यादा काम नहीं लिया करते परन्तु आलसी मनुष्यों के घरों की सफाई यह प्रकृति के सिपाही ही करते हैं।

चौथा प्रकरण

सारांश--

इस पुस्तक के पहिले दो प्रकरणों में भारतीय और पाश्चात्य स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमों की तुलना की गई है। तीसरे प्रकरण में पाश्चात्य वैज्ञानिकों के माने हुए कीटाणुओं द्वारा

विषोत्पत्ति सिद्धान्त की आलोचना की गई है और प्रकृति के नियामानुकूल जलवायु अग्नि (उष्णता) के सहयोग से साधारण मात्रा में विष विनाश और कीटाणुओं के सहयोग से विशेष मात्रा में विष विनाश किया जाने की सिद्धी की गई है।

अब इस चौथे प्रकरण में केवल प्रथम प्रकरण (पृष्ठ १ से ३० तक) में लिखी हुई खोजों का सारांश देते हैं जिससे वे बताई हुई बातें सूक्ष्म रूप में पुस्तक पढ़ने वालों को याद रहें और स्वास्थ्य रक्षक विधियाँ सरलता से प्रयोग में लाई जा सकें।

(i) भूस्थल पर मनुष्यों के रहने वाली बस्तियों, शहरों, और ग्रामों में बीमारियां फैलाने वाला विष कहीं बाहर से नहीं आता और न किसी कीटाणू द्वारा कहीं से लाया जाता है यह विष उसी स्थान पर रहने वाले मनुष्यों और उनके पालतू जानवरों के रहने सहने की क्रियाओं से उत्पन्न होता रहता है। और प्रकृति के नियमानुकूल सब देशों में और सब स्थानों पर यह विष उत्पन्न होना अनिवार्य है। बिना विषोत्पत्ति पदार्थों में परिवर्तन नहीं होता और पदार्थों के परिवर्तन बिना दुनिया में न कोई कार्य हो सकता है और न कोई प्राणी ही जीवित रह सकता है।

इसलिये पदार्थ परिवर्तन का होना सृष्टि नियम का एक परमावश्क अंग है इसके होने से विषोत्पत्ति होना अनिवार्य है।

यह परिवर्तन जल, वायु और पृथ्वी तीनों प्रकार के पदार्थों को थोड़ी बहुत मात्रा में मनुष्यों के रहने वाले स्थानों में हुआ ही करता है और लगातार होता रहता है इस परिवर्तन से

उत्पन्न हुए अल्प मात्रा के विष को बुद्धिमान पुरुष रहन सहन के साथ साथ ही नष्ट करते रहते हैं इकट्ठा नहीं होने देते। क्यों कि इसके इकट्ठा होने से स्वास्थ्य नाशक विष बन जाते हैं।

प्राचीन भारतवासी इस विष के नष्ट करने का बड़ा ध्यान रखते थे यही कारण था कि वे हर घर में वायु की शुद्धि दिन में दो बार एक प्रातःकाल और दूसरे सांय काल छोटी छोटी अगींठियों में अग्नि प्रज्वलित करके उसको घरों के अन्दर आधा घंटे के लगभग रखकर और प्रायः कुछ रोग नाशक और कुछ वायु शोधक औषधियाँ उस अग्नि में जला कर उस के धूम्र से वायु की शुद्धि किया करते थे। इस रोजाना की छोटी मात्रा के प्रयोग के अतिरिक्त हर शहर कस्बे या ग्राम में भारत वासी बहुत से प्राचीन समय से शीत ऋतु निकल जाने पर फाल्गुन या चैत्र मास में एक विशेष तिथि और बिशेष समय पर बहुत बड़े अग्नि के ढेरों को प्रज्वलित करके होली का त्योहार मनाते चले आरहे हैं। यह सब स्वास्थ्य रक्षक प्रयोग थे जिन से जल, वायु की शुद्धि जीवन क्रिया के साथ साथ होती रहती थी। प्राचीन भारत वासी वायु की शुद्धि पर सब से अधिक ध्यान देते थे और बसी हुई बस्तियों के ऊपर की वायु मंडल को उपरिलिखित अग्नि के प्रयोग से खूब स्वच्छ रखते थे जब इस वायु मंडल को इतना स्वच्छ करके रक्खा जाता था तो सज्जन स्वयं विचार सकेंगे कि उन के रहने वाले मकानों या स्थानों में प्रकृति की सफाई के फौजी सिपाहियों को उसमें कार्य करने की क्या ही आवश्यकता पड़ती होगी। इन सिपाहियों की आवश्यकता तो आलसी मनुष्यों के यहां पड़ा करती है जैसा आजकल प्रायः बहुत स्थानों में देखने में आता है।

स्वास्थ्य रक्षा और जलवायु स्वच्छता पर कुछ साधारण आवश्यक बातें

(अ) पृथ्वी जलवायु जहाँ मनुष्य और इनके पालतू जानवर रहते हैं थोड़ी मात्रा में केवल रहन सहन से विषाक्त होजाया करती है या तो इनमें किन्ही प्रयोग द्वारा विषोत्पत्ति को कम कर देना चाहिये और यदि यह संभव न हो सके तो फिर विभिन्न प्रयोगों द्वारा इनके रहने वाले स्थानों की पृथ्वी, जल, वायु की विषाक्त वायु की शुद्धि थोड़ी मात्रा में रोज करनी चाहिये। सब से सरल प्रयोग अग्नि की अंगीठी का है। बिजली के पंखे को उलटा कर के भी घरों की दूषित वायु को बाहर निकाला जा सकता है परन्तु सब से अच्छा अग्नि की अंगीठी का प्रयोग है।

(३) विषों के बढ़ने पर पार्थिव और जलीय पदार्थों से बढ़ा हुआ विष एक देशी होने के कारण शीघ्र ही साफ किया जा सकता है। अग्नि से पकाना या उबालना आदि प्रयोग अति उपयोगी हैं। वायु से विष को साफ करने के लिये ग्रामों में चौराहों पर या घरों के आंगन के मध्यान्ह में बड़े २ होली की तरह के लकड़ियों या उपलों के ढेर लगाकर होली की तरह जलाने से और कई घंटे इनको जलते रहने देने से वायु मंडल स्वच्छ हो जाता है जब यह विशेष होलियें जलाई जायें तो घरों में दरवाजे खिड़कियें सन्दूक आदि के ढकने सब खोल कर रखने चाहियें जिससे मकान के बन्द स्थानों से दूषित वायु खिच कर होली की ज्वाला में चली जावें। होली जितनी बड़ी होगी उतना ही शीघ्र कार्य करेगी। यह होलियें बीमारी फैले हुये स्थानों में

जादू का कार्य कर के दिखावेंगी—लेखक ने काफी तजुर्बे किये हैं।

(उ) जैसे पीछे बताया गया है हर खाद्य पदार्थ तीन अवस्थाओं से गुजरता है यानी अवस्था नं० १ अनाज के दाने के उसके पेड़ से टूटने के समय से उसके खाने के लिए मुंह में जाने तक। अवस्था नं० २ उस दाने के शरीर के अन्दर के सफर को यानी जब से वह दाना मुह में खाया जाता है और जब तक उस दाने का एक हिसा मनुष्य शरीर से विष्टा के रूप में परिणत होकर बाहर नहीं निकल जाता। अवस्था नं० ३ विष्टा की उत्पत्ति से प्रारंभ होती है और उस समय तक रहती है जब तक उस विष्टा को विष्टागृह में बन्द करके सड़ा गला न दिया जाय (चौथी अवस्था वह होती है जो इस सड़ी गली विष्टा के प्रमाणुओं को फिर दूसरी बार अनाज के पौधों में परिणित कर के अनाज के दाने उत्पन्न करदें इस अवस्था का बर्णन हमने पुस्तक में नहीं किया)

अवस्था नं० १-में खाने की वस्तुओं और अनाजों को सुरक्षित रखने के लिये चार तरीके हैं जोनसा सरलता और थोड़े खर्च से प्रयोग में लाया जा सके अवश्य करना चाहिये। खाद्य पदार्थ से जल, वायु, अग्नि (५०° से १५° फ० ह०) के इकट्ठे संसर्ग से तीनों में से एक तत्व को हटा देना चाहिये। जैसे—

(i) जल को हटाने से (या सुखाने) डैसीकेशन।

(ii) वायु को हटाने से (शून्य) वैकूम।

(iii) अग्नि को हटाने से (वर्फ) फ्रीज़ीडाइज़िंग।

(iv) रसायणिक प्रयोग से (मसाले लगाकर) कैमीकल यदि पूरे तौर से इन चारों प्रयोगों में से कोई भी न होसके तो भी

अधूरे प्रयोग भी खाद्य पदार्थों की थोड़ी मात्रा में रक्षा अवश्य करेंगे और उस खाद्य पदार्थ में फलतः विष की उत्पत्ति न्यून मात्रा में ही होगी और जल, वायु सुरक्षित रहेगी।

अवस्था नं० २—में खाने के बाद अच्छा हो हाज़मा जल, वायु, अग्नि (५० ° से १५० ° फ०ह०) के इकट्ठे संसर्ग से ही होता है यानी मनुष्य तापक्रम ९८.४ ° फ० ह० पर ऊंचा स्वास्थ्य रहता है। वैद्यों की सम्मति से अपनी पाचन शक्ति को अच्छा रखने से मनुष्यों का शरीर बहुत साधारण मात्रा में विषोत्पत्ति करेगा और घरों के वातावरण को केवल थोड़ा ही विषाक्त करेगा। ऐसा न होने से एक एक मनुष्य शरीर और घरों को बन्द वायु में विशेष कर रात्रि को सोते समय वायु मंडल में एक बहुत दीर्घ गंदगी के ढ़ेर से भी अधिक मात्रा में विष फेंकता रहेगा।

अवस्था नं० ३—में विष्टा मूत्र और शरीर के अन्य भागों के मल को शरीर से निकलते ही जल, वायु, अग्नि (५० ° से १५० ° फ० ह०) के इकट्ठे संसर्ग में से किसी भी एक तत्व को हटा लेना चाहिएं जिससे प्राकृतिक परिवर्तन और सड़ाव गलाव की क्रिया थोड़ी देर तक (गुसलखाने से विष्टागृह में दफ़न करने तक) रुक जावे विष्टा से जल और अग्निका तो संसर्ग हटाना बहुत कठिन और खर्चीला है परन्तु वायु का संसर्ग सैनिटरी-पाइपों के उपचार से स्वयं हट जाता है। जहां सैनिटरी पाइप न लगे हों वहां विष्टा को किसी बन्द बक्स या बर्तन में बन्द करके रखना चाहिये जिसमें वायुमंडल की वायु कम से कम दूषित हो।

जलाना और गलाना दो प्रकार से विषाक्त का छिन्न भिन्न करना।

(क) प्राचीन भारतीय वैज्ञानिकों के दृष्टी कोण से मल और मृतक शरीर दोनों को छिन्न भिन्न करने का सर्वोत्तम साधन अग्नि से दहन कर देना ही है क्यों कि इससे शीघ्र ही परिवर्तन हो जाता है और चारों तत्व पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एक दूसरे से भिन्न २ हो कर भूस्थल में अपने २ समुद्रों में लुप्त हो जाते हैं और दूसरा साधन गलाने का है जिस मे परिवर्तन गलाव और सड़ाव की क्रिया से बहुत शनैः २ होता है। इस प्रकार के साधन में विषोत्पत्ति की मात्रा बहुत अधिक होती है। साधारणतः जमीन में गढ़े खोद कर विष्टा गृह बना कर उन में विष्टा और अन्य मलों को दबा दिया जाता है। प्राकृतिक नियमानुसार विष्टा गृह में पहुंच ने के बाद इसको जल, वायु और अग्नि (५० ° से १५० ° फ० ह०)का इकट्ठा संसर्ग ही जल्दी से जल्दी जला सड़ा देगा परन्तु इस प्रयोग से बदबू काफी उड़ेगी और वायु मंडल विषाक्त होगा इस कारण इस प्रयोग में थोड़ा सा परिवर्तन कर के काम में लाया जाता है यानी गढ़ों को हलकी मिट्टी की तह से ढांप दिया जाता है इससे बदबू का उड़ना बहुत कम हो जाता है और वायु पहिले ही काफी प्रवेश कर जाती है। इन विष्टा गृहों में चूंकि विष्टा एक बड़ी मिकदार में इकट्ठी होती है इसलिये इसके अन्दर प्रकृति के सफाई करने वाले कीटाणु उत्पन्न हो कर इसका परिवर्तन करते हैं। इसी प्रकार से सैप्टिक टैन्क प्रकार के विष्टा गृहों में भी कीटाणुओं द्वारा विष्टा को छिन्न भिन्न कराया जाता है। अन्तर प्राकृतिक सिपाहियों के केवल प्रकार और आकृति का

है। दोनों प्रकार के विष्टा गृहों में भिन्न २ प्रकार के कीटाणु कार्य करते हैं।

विषाक्त पदार्थों (मल मूत्र आदि) को नष्ट करने वाला एक और वैज्ञानिक सरल और परमोपयोगी साधन

जहां प्राकृतिक नियमों पर आधारित केवल दो ही प्रकार के साधन पदार्थ को नाश (छिन्न-भिन्न) करने वाले हैं एक दहन और दूसरा गलाना जैसा उपरिलिखित विवरण में बता चुके हैं—वहाँ भारत देश के प्राचीन स्वास्थ्य वैज्ञानिक और स्वास्थ्य इन्जीनियर एक तीसरे प्रकार का साधन मल नाश करने का प्रयोग में लाये। इस साधन को हम 'विकरण' के नाम से पुकारते हैं। यह साधन असल में 'गलाव' साधन ही का एक विशेष रूप है। इसमें तीनों प्रकार के विषाक्त पदार्थ अथवा सूखे तरल और गैसीय मनुष्य शरीर से निकलते समय ही पृथ्वी जल, वायु के समुद्रों में मिला दिये जाते हैं। 'विकरण' साधन में होता यह है कि किसी प्रकार के मल को बहुत ही न्यून मात्रा में उठाकर उसी प्रकार के तत्व के समुद्र में उत्पन्न होने के साथ साथ मिला देना, जहां पर वह इतना न्यून गरदाना जावे कि वायु और अग्नि (ऊष्णता) के प्रभाव से कुछ क्षणों में ही उस मल की शुद्धि प्राकृतिक नियमानुसार हो जाती है और कोई भी पदार्थ अन्त में विषाक्त या दूषित नहीं रहता।

यह 'विकरण' साधन छिदी बसी हुई बस्तियों और ग्रामों में बड़ा ही उपयोगी साधन है। इतना सस्ता प्रयोग है कि खर्चा कुछ होता ही नहीं और स्वच्छता की मात्रा उसी ऊंचे दर्जे की प्राप्त हो जाती है। यदि इस

साधन में स्वच्छता इतनी ऊंची न प्राप्त होती संभवतः भारत के प्राचीन वैज्ञानिक इसका कभी प्रयोग न करते (लेखक का यह विश्वास है)।

यह 'विकरण' साधन मल नाश करने में भारत की ९५ प्रति सैंकड़ा ग्रामीण जनता प्रयोग में लाती है और हमारे गरीब देश के लिये यह साधन बड़ा ही उपयोगी और हितकारी है। इस को दूसरे देशों में भी लोग प्रयोग में लाते रहे हैं और कहीं २ ला भी रहे हैं। इसके प्रयोग में परिवर्तन करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

इसी साधन के आधार पर ग्रामीण सज्जन शौचादिक क्रियाएं ग्रामों के नजदीक जंगल में कर लेतें हैं और रहने के मकानों में पखाने आदि प्रायः नहीं बनाते। प्राकृतिक नियमानुसार मनुष्य स्वास की बिषाक्त वायु तो इसी साधन पर दुनियां के हर देश में वायु मंडल में फेंकते रहते है। तो यदि वह मल मूत्र भी इसी साधन से बेगरी बस्तियों में 'विकरण' क्रिया से छिन्न भिन्न कर दिया जावे तो इससे कोई खराबी नहीं होती। भारत वर्ष के प्राचीन कई ग्रन्थों में इस बात का वर्णन आया है कि 'एक बड़े तालाब का पानी गंदा नहीं होता तात्पर्य यह था कि एक बड़े तालाब का जल थोड़ी सी गंदगी से गंदा नहीं होता'।

खुली वायु मंडल में जब एक मनुष्य पेशाब करता है तो कोई गंदगी नहीं फैलती क्यों कि उस पिशाब में से बिषाक्त 'अमोनिया' और अन्य प्रकार की गैसें खुले वायु मंडल में मिल जाती है और जल का हिस्सा जमीन में शोषित होकर

नीचे चला जाता है। इसी प्रकार से खुली हवा में विष्टा तुरन्त ही नष्ट कर दी जाती है। इस से सारांश यह निकलता है कि मल मूत्र और विष्टा को छिन्न भिन्न करने के तीन प्रकार के साधन हैं।

(i) दहन (ii) गलाव सड़ाव (iii) विकरण—इन में से घनीबसी हुई बस्तियों के लिए जैसे शहर और बड़े कस्बे और ग्राम 'गलाव सड़ाव' का साधन काम में लाया जावे और बेगरी बसी हुई बस्तियों में जैसे छोटे ग्राम 'विकरण' साधन काम में लाया जावे। दोनों साधन अपनी २ जगह पर उपयोगी हैं। इस बात का अवश्य ध्यान रहना चाहिये कि जौनसा साधन किसी स्थान पर प्रयोग में लाया जावे पूर्णतः लाया जावे ऐसा न करने से दोनों प्रकार की क्रियाएँ अधूरी रह जायेंगी और वातावर्ण (जल वायु) की शुद्धि पूरे प्रकार से न हो सकेगी क्योंकि दोनों के उसूल एक दूसरे से अलग हैं जहाँ 'गलाव सड़ाब' साधन में मल मूत्र विष्टा को किसी सीमैंट आदि जल को शोखित न करने वाली वस्तु का फर्श लगाकर जल्दी से जल्दी इकट्ठा करके किसी बक्स में बन्द करने का प्रयत्न किया जाता है वहां 'विकरण' साधन में घरों के कच्चे फर्श ज्यादा उपयोगी होते हैं। जैसे यदि दो छोटे छोटे मकान के कमरे बनवाए जाएं एक पक्का सिमैंट के फर्श का दूसरा कच्चा मिट्टी के फर्श का। दोनों में रात्रि के समय यदि एक एक बच्चा पिशाब कर दे तो पक्के फर्श वाले मकान में बदबू शीघ्र ही आने लगेगी और कच्चे मकान में चार बच्चों के मल मूत्र से भी बदबू न आयेगी—इसका कारण स्पष्ट है पक्के मकान की दीवारें और फर्श आदि पक्के होने के कारण गंदी और विषाक्त वायु

और जल को शोषित करने की सामर्थ मौजूद नहीं जब कि कच्चे मकान की दीवारों और फर्श में शोषित कर ने वाली सम्मर्थ मौजूद होती है और इसी कारण से शोषण क्रिया आरंभ साथ साथ हो जाती है। इसी के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ग्रामों में जब तक पहिले वहाँ की सफाई के तरीकों में परिवर्तन न कर दिया जावे जब तक वहां पर कच्ची गलियों या नालियों को पक्का करने की कोई जल्दी न करनी चाहिये वरना स्वच्छता के स्थान में गंदगी अधिक रहना प्रारंभ हो जायगी और स्वास्थ्य दृष्टि कोण से उसका फल विपरीत निकलेगा।

सारॉंश यह निकला कि जहाँ बंद वायु में विष्ठा और मूत्र आदि को इकट्ठा कर के 'सड़ाव गलाव' करने का साधन शहरों और घनी बसी हुई बस्तियों के लिए परमोपयोगी है वहाँ पर 'बिकरण' साधन ग्रामों और छिदी बसी हुई बस्तियों के लिए परमोपयोगी है। 'विकरण' साधन इतना सरल और सस्ता है कि हमारे देश की ६५ प्रतिशत जनता इसी साधन का प्रयोग करती है। जिन ग्रामों में उन्नति के हितार्थ पक्के मकान सड़कें या नालियें बनाई जावें उन ग्रामों में मल नष्टता के साधन भी साथ साथ बदल दिया जाना परमावश्यक है।

(ख) जहां पर हमारे मौजूदा स्वास्थ्य रक्षक साधनों में अनेक कारणों से कुछ त्रुटियाँ आगई हैं वहां पर मौजूदा पाश्चात्य स्वास्थ्य रक्षक साधनों में बहुत सा अंश असत्यता का है। हमको यह भ्रम न होना चाहिये कि पाश्चात्य वैज्ञानिकों की हर बात सत्यता पर आधारित है और हमारे लिये अनुकरणीय है।

हमको सर्व प्रथम अपने प्राचीन भारतीय वैज्ञानिकों के बताए हुए सिद्धान्तों को भली प्रकार विचार कर निरीक्षण करना चाहिए और हरेक की वैज्ञानिक महत्वता को समझना चाहिये. और आवश्यकतानुकूल देश और काल का ध्यान रखते हुए थोड़ा बहुत घटा बढ़ा कर उनको यदि कहीं त्रुटियां मिले उन को शोधन कर के फिर अपनाना चाहिये और फिर भी यदि यह बात प्रमाणित, हो जावे कि पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने कोई नवीन आविश्कार स्वास्थ्य सम्बन्धी सिद्धान्तो में किया है जो हमारे सिद्धान्तों के प्रतिकूल नहीं पड़ता और फिर भी उपयोगी है तो हम को विशाल हृदय से एसी बातों को मान ही लेना चाहिये परन्तु मानना तब चाहिये जब उस सिद्धाँत की उपयोगता अपने सिद्धांतों की उपयोगता से अधिक सिद्ध हो जावे और साथ २ इसके प्रयोग सस्ते भी हों, जिन को हमारी देश की जनता सहन कर सके। हम को ऊपरी तड़क भड़क या बड़े २ कारखानों की बनाई हुई केवल कहावत मात्र में जादू का असर दिखाने वाली स्वास्थ्य संबन्धी स्वच्छता उत्पादन औषधियों के चक्कर से अपने को बचाकर ही रखना होगा और झूटी उन्नति के प्रलोभन से अपने उन स्वास्थ्य रक्षक सिद्धान्तों का जो प्राकृतिक नियमों पर आधारित है बलिदान नहीं करना है और साधारण त्रुटियों के गढ़े से निकल कर असत्यता को खाई में नहीं गिरना है भले ही हमको अपनी त्रुटियाँ दूर करने में थोड़ी देर हो जावे कोई विशेष हानि नहीं होगी।

इतना विश्वास हम फिर दिलाते हैं कि भारत देश में पूर्वजों की बहुत सी स्वास्थ्य संबन्धी, रहन सहन, खान पान, की क्रियायें वैज्ञानिक सत्यता पर आधारित थीं और अब भी है

केवल हम को इन क्रियाओं के वैज्ञानिक महत्व से अनभिज्ञ होने के कारण यह सुनना पड़ता है कि पाश्चात्य आधुनिक वैज्ञानिकों ने स्वास्थ्य विज्ञान में महान उन्नति कर दिखलाई है और यह कि भारत देश वासियों की उन्नति भी केवल उन्ही साधनों द्वारा हो सकती है।

(ग) धूम्र विज्ञान--केवल सादी अग्नि की प्रज्वलता से नित्य प्रतिदिन छोटी छोटी अंगीठियों और अग्नि के ढ़ेरों में अग्नि जला कर घरों की विषाक्त वायु और बीमारी आदि के फैलने पर या चैत्र और फाल्गुन मास में होली आदि के अवसरों पर ग्रामों और शहरों के चौराहों पर बड़े परिमाण में अग्नि के ढ़ेरों में अग्नि जला कर गलियों और मुहल्लों की विषाक्त वायु तो प्राचीन भारत वासी स्वच्छ करने में प्रवीण थे ही परन्तु साथ साथ एक और साधन जिसको 'धूम्र विज्ञान' कहा जाता है इस में भी निपुण थे। इस प्रज्वलित अग्नि में साथ २ कुछ ऐसी विष नाशक, रोग नाशक, स्वास्थ्य वर्धक औषधियां जला कर इन के धूम्र से अनेक प्रकार के लाभ लिये जाते थे। इस विज्ञान में विदेशी वैज्ञानिक आज तक अनभिज्ञ हैं और अभी तक कोई पुस्तक इस के ऊपर विदेशी वैज्ञानिकों ने नहीं लिखी है। भारत में अब भी यह साधन प्रयोग में लाया जाता है लेखक के पास ६० धूम्र पदार्थों की सूची मौजूद है जो जनता के हितार्थ यदि भारतीय वैज्ञानिक प्रमाण में लाना चाहें तो ला सकते हैं।

—* समाप्त *—

पुस्तकालय

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

विषय संख्या 55.6 / 926अ

आगत पंजिका संख्या 26626

तिथि	संख्या	तिथि	संख्या
18 NOV 1965			
25 SEP 1968			
10 MAY 2002			

भारतीय जनता के हितार्थ प्रकाशित

स्वास्थ्य विज्ञान पर एक भारतीय वैज्ञानिक की नवीन खोज

द्वितीय भाग

१—जो गुलाबी रङ्ग के टाइटिल पेज से प्रकाशित किया जारहा है ।

२—इस पुस्तक का प्रथम भाग नीले रङ्ग के टाइटिल पेज से फ़रवरी सन् १६५१ में प्रकाशित किया जा चुका है ।

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

माधोप्रसाद



स्वास्थ्य विज्ञान पर एक भारतीय वैज्ञानिक की नवीन खोज



लेखक और प्रकाशक—

माधोप्रसाद (रायसाहब)

ए०-एम-आई-स्ट्रक्-ई (लन्दन)

एफ-आर-एस-ए० (लन्दन)

(सिविल इञ्जीनियर और साइनटिस्ट)

(रेलवे के डिवीज़नल इञ्जीनियर—लम्बी छुट्टी पर)

(भारतीय प्राचीन वैज्ञानिक रहस्यों के खोजक)

(बिल्डिङ्ग-स्थानान्तर करने वाले भारतदेश में सर्वप्रथम इञ्जीनियर)

मोरगञ्ज, सहारनपुर

(उत्तर प्रदेश)



प्रकाशक—

माधोप्रसाद

रेलवे डिवीज़नल इञ्जीनियर (छुट्टी पर)

मोरगञ्ज, सहारनपुर (उ० प्र०)

लेखक के सर्वाधिकार सुरक्षित हैं ।

प्रथम संस्करण १९५१

मूल्य—सद्भावना

मुद्रक—

रॉयल प्रिंटिङ्ग प्रेस, सहारनपुर

वक्तव्य

जैसा कि इस पुस्तक के प्रथम भाग के वक्तव्य में पहिले बताया जा चुका है यह हमारा भारत देश प्राचीन काल में विज्ञान का केन्द्र था अब तो बहुत से भारतीयों को इस बात का पूर्ण ज्ञान हो चुका है कि विज्ञान क्षेत्र की एक भी कला ऐसी नहीं है जिसमें प्राचीन भारतवासियों ने दक्षता न प्राप्त की हो । सर्व प्रथम मैं इसी बात की पुष्टि करूँगा कि भारतीयों के पूर्वजों ने विज्ञान को इस अधिकता से माना था कि जीवन यापन की छोटी छोटी क्रियाएँ भी विज्ञान की सत्यता पर आधारित थीं । और यह हमारे लिये बड़े गौरव की बात है कि हमारे पूर्वज आज से कई हज़ार वर्ष पहिले भी जब दुनिया के बहुत से देशों में लोग विज्ञान के नाम तक से अनभिज्ञ थे उस समय में भी विज्ञान में इतनी दक्षता रखते हों । हाँ एक बात हम अवश्य मानने को तैयार हैं कि जहाँ पर हमारे पूर्वजों ने विज्ञान में इतनी दक्षता प्राप्त करली थी उसके प्रतिकूल हमने अपने समय में न केवल विज्ञान की शिक्षा प्राप्ति की ओर से ध्यान ही हटाया एवं अपने पूर्वजों की वैज्ञानिक क्रियाओं उनके बनाए हुए वैज्ञानिक यन्त्रों आदि की ओर भी कदाचित् ध्यान नहीं दिया और अपने को प्राचीन ग्रन्थों के अवलोकन और उनके बनाकर छोड़े हुए रसम-रिवाजों से (जिनमें लेखक की दृष्टिकोण से अधिकांश में से विज्ञान की सत्यता भरी हुई है) भी अनभिज्ञ रखा ।

यदि ऐसा करने में कुछ दोष हमारी छैसौ वर्ष की पराधीनता का भी है परन्तु आधुनिक काल के शिक्षित नवयुवकों को इस स्वतन्त्रता काल में इस कमी की पूर्ति शीघ्र ही करनी होगी। लेखक का उद्देश्य यह कदापि नहीं कि भारतीय पूर्वजों की प्रशंसा की ही जावे। भले ही आप प्रशंसा न करें क्योंकि ऐसा करने या न करने से कोई लाभ या हानि नहीं होगी। हमारा तात्पर्य केवल सत्यता की खोज करना है कि हम भारतवासी विज्ञान को कितना समझते थे और अब समझते हैं हमको विज्ञान की परिभाषा को प्राकृतिक नियमानुकूल सबसे पहले समझना होगा कि विज्ञान पञ्चभूतों यानी पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश का प्राकृतिक नियमों के अनुसार विभिन्न प्रकार की क्रियाओं और घटनाओं के सत्यज्ञान को ही माना जाता रहा है। न तो थोड़े से आधुनिक विदेशी वैज्ञानिकों के एक ऊँचे पैमाने की प्रयोगशाला में प्रकाशित की हुई कीटाणुओं के विषों को उत्पन्न करके मनुष्यों को क्षति पहुँचाने के अविवेकी कल्पना को विज्ञान कहा जा सकता है और नहीं भारतीयों की प्राचीन वह बातें जो प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध हों उनको ही विज्ञान कहा जा सकता है। विज्ञान सत्यता की बुनियाद पर स्थिर हुई घटनाओं के सही ज्ञान का नाम है और सत्यता और प्राकृतिक नियम किसी एक देश या जाति की बपौती नहीं है। हम को आधुनिक वैज्ञानिक शिक्षा के साथ २ भारतीय प्राचीन ग्रन्थों में भरे हुये वैज्ञानिक आदेशों के ज्ञान की भी प्राप्ति करनी होगी और साथ २ अपने अन्वेषण भी करने होंगे और फिर सत्य असत्य का निर्णय बड़े निष्पक्ष और विशाल भाव से करके जनता को सावधान कर देना होगा कि कितनी सीमा तक हमारे देश के प्राचीन सिद्धान्त सत्य हैं और कितनी सीमा में आधुनिक वैज्ञानिकों के सिद्धान्त मानने योग्य हैं।

लेखक केवल एक इंजीनियर और एक छोटा सा अन्वेषक वैज्ञानिक है और यह पुस्तक आरोग्य विज्ञान पर लिखी जा रही है। परन्तु कुछ मिली-जुली वैज्ञानिक कलाओं पर यहाँ उदाहरण दिये जाते हैं जिनको

पढ़कर भारतीय नवयुवक वैज्ञानिक और जनता स्वयं यह भली भांति निर्णय कर लेंगे कि हम पर आधुनिक विदेशी वैज्ञानिकों और उन के अनुयाई बहुत से भारतीय वैज्ञानिकों का हमारे ऊपर विज्ञान-शून्य होने का आरोपण लगाना कहाँ तक सत्य है। उदाहरण एक २ या दो २ विज्ञान की विभिन्न कलाओं के केवल दिग्दर्शनार्थ दिये जाते हैं।

(१) साधारण सूत कातने का चरखा—जो कि हमारे देश में हज़ारों वर्षों से अपनी आकृति और बनावट में जैसा का तैसा मौजूद है। एक बार और अच्छी तरह से इस यंत्र का निरीक्षण करिये और फिर अपने मित्र वैज्ञानिकों से प्रश्न कर दीजिये कि क्या वह इस यंत्र के पूर्ण निरीक्षण के बाद भी यह भ्रम रखते हैं कि प्राचीन भारतवर्ष में ऊँचे दर्जे के मैकेनिकल इञ्जीनियर अथवा यंत्र विज्ञान के निपुण मौजूद न थे। लेखक का दावा है कि इस यंत्र में थोड़े बहुत अंशों में यंत्र विज्ञान के सब सिद्धान्तों का प्रयोग कर लिया गया है। लेखक के दृष्टिकोण में आश्चर्य नहीं कि बापू जी (महात्मा गाँधी) ने इसको इसी कारण से इतना महत्व दिया था। यह छोटा सा सूत कातने का यंत्र भारतीय पूर्वजों का आविष्कार किया हुआ है जिसकी मशीन इतनी सरलता और पूर्णता लिये हुये है कि आज तक भी इसमें कोई अच्छे प्रकार की उन्नति न हो सकी।

(२) ज़मीन जोतने का देशी हल—जो हज़ारों वर्षों से अपनी यही आकृति और बनावट लिये हुये है। इस पर भी चरखे की उप्रलिखित बहुत सी बातें उसी प्रकार लागू होती हैं।

(३) तम्बाकू पीने का हुक्का—यह यंत्र भारत में हज़ारों वर्षों से अपनी मौजूदा बनावट में मौजूद है। क्या इसका निरीक्षण करके कोई वैज्ञानिक यह विचार करने या कहने का साहस करेंगे कि प्राचीन भारतीय जल विज्ञान (हाइड्रोस्टेटिक्स) में निपुण न थे।

(४) पानी खींचने के रहट—यह हज़ारों वर्षों से अपनी मौजूदा आकृति और बनावट में मौजूद हैं। कम से कम छः सौ वर्षों से लाहौर

के पास एक स्थान स्थित है जहाँ पर उस समय छः रहट इकट्ठे लगे हुये थे। उस स्थान का नाम 'छः हरटा' है।

इस यंत्र का निरीक्षण करके क्या कोई इञ्जीनियर या वैज्ञानिक सोचने या कहने का साहस करेंगे कि भारत के इञ्जीनियरों या कारीगरों को दांतेदार पहियों और पुलियों का ज्ञान न था और यह कि यदि यह भारतवासी थोड़ा सा पुरुषार्थ करें तो घड़ियें आदि वस्तुयें बड़ी सुविधा से नहीं बना सकते।

(५) मनुष्य के शरीर में लगने वाली सिङ्गी—यह एक सींग के टुकड़े से शरीर के ऊपर लगा कर वायु शून्यता से शरीर के दर्द आदि को हटाने का देसी साधन है जो इस देश में हज़ारों वर्षों से प्रयोग में लाया जा रहा है। यह इस बात को भली प्रकार प्रमाणित कर देता है कि यहाँ पर वायु विज्ञान (न्यूमेटिक्स) का भी ज्ञान भली प्रकार से मौजूद था।

(६) सुनारों की नलकी, लोहारों की धौंकनियें और पंखे जो हज़ारों वर्षों से प्रयोग में लाये जा रहे हैं, यह बात प्रमाणित कर देते हैं कि प्राचीन काल में भारतीयों को विशेष मात्रा में आक्सीजन देकर अग्नि को प्रज्वलित करने का ज्ञान भी था।

(७) लोहे के औज़ारों पर आब देने के साधन जो भारतवर्ष में हज़ारों वर्षों से प्रयोग में लाये जा रहे हैं वह आधुनिक साधनों से बहुत मात्रा में मिलते-जुलते हैं।

(८) ज्योतिष शास्त्र में अनेक ग्रन्थ मौजूद हैं जिनके हिसाब से अब भी चन्द्र और सूर्य ग्रहण तक के सही समय निकाले जाते हैं।

(९) अङ्क, रेखा और बीज गणित पर कई प्राचीन पुस्तकें अब भी मौजूद हैं। जिन पुस्तकों में से 'लीलावती' एक है जिसमें वृत्तों और त्रिकोणों के आश्चर्यजनक और सरल विधियों पर अनेक सूत्र देखने में आते हैं। उसमें से अनेक विधियों की ज्यूं की त्यूं नकल

करके कई विदेशी गणित शास्त्रज्ञों ने अपने नामों से उन्हीं विधियों को (अपनी बनाई हुई) अनेक पुस्तकों में प्रकाशित भी कर डाला।

अब विज्ञान की अन्य कलाओं पर कोई और उदाहरण न देते हुये केवल आरोग्य विज्ञान कला सम्बन्धी कुछ उदाहरण देते हैं:—

(१०) प्राचीन भारतवासी जैसा कि विस्तृत रूप में इस पुस्तक के प्रथम भाग के पहिले प्रकरणों में वर्णन कर चुके हैं स्वास्थ-नाशक विषोंकी उत्पत्ति का मूल कारण खाद्य पदार्थों (पार्थिव वनास्पतिक पदार्थ) में अन्य तीनों तत्वों अथवा जल, वायु और अग्नि के सम-कालीन सम्पर्क को माना है और उस विष की उत्पत्ति होने के बाद इस विष की चालकता और विस्तीर्णता का मूल कारण जल और वायु (की वाहन क्रिया) को माना है और उन्होंने अपनी सत्य आरोग्य-विज्ञान में दक्षता का प्रमाण केवल दो ही बातें बता कर भलीं भाँति दे दिया है। एक तो यह बतलाया कि गंदे और दूषित पदार्थों की बढ़ोतरी को रोकना चाहिये और दूसरी बात यह कि केवल जल और वायु की शुद्धि रखने पर ही विशेष ध्यान दिया जावे। भारतीय स्वास्थ वैज्ञानिकों के सिद्धान्त की पुष्टि युनानी वैज्ञानिकों ने भी उन्हीं भारतीयों के शब्दों में ज्यूँ की त्यूँ की है उन्होंने भारतीय वैज्ञानिकों द्वारा स्वास्थ रक्षार्थ जल वायु की शुद्धि रखने के सर्व विख्यात सिद्धान्त की ज्यूँ की त्यूँ पुष्टि की है। केवल आधुनिक योरपियन वैज्ञानिकों ने जैसा कि इस पुस्तक के प्रथम भाग के दूसरे प्रकरण में सविस्तार वर्णन किया जा चुका है, इन दूषित विषों की उत्पत्ति और चालकता का मूल कारण केवल छोटे २ विभिन्न आकृति और भाँति के कीटाणु, मक्खी, मच्छर आदि को आज से केवल सौ वर्ष पहिले बताकर आधुनिक नए आविष्कारों की प्रशंसा प्राप्त की और मुझे बड़े खेदसे लिखना पड़ता है कि कीटाणुओं को विषों के कारण होने के निर्मूल सिद्धान्त को प्रचलित करने में इतना उतावलापन कर डाला कि इस बात को केवल समय ही बतलायगा कि इस सिद्धान्त

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

की सत्यता प्रमाणित करने में इनको आगे चल कर क्या २ कठिनाइयें पड़ेंगी।

प्राचीन भारतीयों को प्राकृतिक नियमों का भली प्रकार से ज्ञान था। इसी कारण उन्होंने किसी भी पुस्तक में किसी भी जगह इन कीटाणुओं को विषों का कारण बताना उचित नहीं समझा इसके प्रति कूल इन कीटाणुओं को विषों का कार्य (विष को नाश करने वाले) कई पुस्तकों में बताया गया है।

हमारे प्राचीन भारतीय वैज्ञानिकों ने जल और वायु की शुद्धि के साधन घरों के भीतर खुले चौकों में प्रज्वलित अग्नि को अंगीठियों या अलावों में नित्य प्रति जलाना और फिर समयानुकूल उसमें कुछ रोग नाशक पौष्टिक, और सुगंधित पदार्थों को जलाकर उनका धूम्र देना बताया है जो वायु शुद्ध करने के बहुत सरल प्रयोग हैं और लेखक का दावा है कि यह प्रयोग बहुत सरल और प्रभाव-शाली है जिससे बहुत थोड़े से परिश्रम और व्यय से घरों और मौहल्लों की वायु शुद्ध की जा सकती है। उन्होंने घरों की थोड़े २ परिमाण की वायु को व्यक्तिगत शुद्ध करने के अतिरिक्त मौहल्ले और गलियों के चौराहों पर बड़े २ ढेरों में प्रज्वलित अग्नि के ढेर जलाकर दूर २ की वायु को एक ही प्रयोग द्वारा सामूहिक रूप में शुद्ध करने की प्रथा भी चलाई थी। (पूर्ण होली के विवरण को प्रथम भाग के पृष्ठ १६-१८ पर देखो)

इसके प्रतिकूल आधुनिक विदेशी वैज्ञानिकों ने अपने बताये हुए दोषों और विषों की उत्पत्ति का मूल कारण इनको मानकर इन कीटाणुओं का जिस प्रकार से भी हो सके उनका विध्वंश करना ही बताकर अपने हृदय की शान्ति की और विभिन्न प्रकार के विज्ञापनों द्वारा दुनिया को यह बतलाया कि यह कीटाणु दल ही मनुष्यों के भयानक शत्रु हैं। जहाँ भी मिलें जैसे भी मिलें इनका सर्व नाश

कर दिया जावे। और यह सर्व नष्टता कर देना ही उस विष की उत्पत्ति को निर्मूल कर देगी।

बड़ी २ विदेशी कम्पनियों ने इन कीटाणु और मक्खी, मच्छरों को मनुष्य मात्र के भयंकर शत्रु की उपाधि देकर धन उपार्जन किया और अब भी कर रहे हैं। इनको इन कीटाणुओं को मनुष्यों का भयंकर शत्रु घोषित करते समय प्रायः इस बात का भी ध्यान न रहा कि थोड़े ही समय के पश्चात जब लोग गृहमल-शोधक (सैप्टिक टैंन्क्स) बनायेंगे तो फिर इन कीटाणुओं को मनुष्य के भयंकर शत्रु की उपाधि, को मनुष्यों के परम मित्र की उपाधि से बदलना पड़ेगा। जब उनकी उत्पत्ति मल शोधन के लिये कृत्रिम साधनों से करनी पड़ेगी। क्या यहाँ पर यह सरल प्रश्न उन वैज्ञानिकों से नहीं किया जा सकता क्योंकि इन सैप्टिक टैन्कों में वैक्टीरिया की उत्पत्ति कराकर मूल विनाश करवाने के साधनों से भी क्या उनको, अभी तक यह भ्रम रह जाता है कि कीटाणु विषोत्पत्ति करते हैं और विष निर्माण नहीं करते। लेखक ने भारत में सर्व प्रथम अपने कीटाणुओं के विषों की उत्पति का कारण न होने का और इसके प्रतिकूल एवं विषों का कार्य (नाश करने वाले) होने का सिद्धान्त (इस पुस्तक के दो भाग इस वर्ष में प्रकाशित कर के जनता के हितार्थ) स्थापन करने का साहस किया है और यहाँ पर केवल प्रथम भाग के पृष्ठ ४६-४८ पर किये हुये दावे को फिर दुहरा दिया जाता है कि उदाहरणार्थ केवल घरेलू मक्खी के बारे में जो भी आधुनिक वैज्ञानिक चाहें लेखक को प्रमाणित करके दिखावें कि मक्खी मनुष्य का शत्रु है मित्र नहीं। यदि मक्खी को मनुष्य का शत्रु प्रमाणित कर दिया जावेगा तो लेखक अन्य छोटे बड़े सब कीटाणुओं को भी उसी प्रकार से मनुष्य का शत्रु मान लेने को तय्यार है। हम इस विषय में अधिक टीका टिप्पणी न करेंगे केवल जनता और भारतीय वैज्ञानिक स्वयं इस बात का निरीक्षण करके सत्य

और असत्य का निर्णय कर लेंगे। यहाँ पर एक ही बात और बतला कर दसवें उदाहरण को समाप्त करते हैं।

यदि डाक्टर काहन, डाक्टर डर्विन और डाक्टर कौश जिन्होंने सन १८४६ और सन् १८७५ में यह कीटाणु सिद्धान्त (कीटाणुओं का विषोत्पत्ति का कारण होना) को प्रचलित किया है अपने लेखों में इन घोषित किये हुये शत्रुओं से बचने के भी उपाय साथ साथ बता देते तो बहुत से वैज्ञानिक अभी सौ दोसौ वर्ष और भी इस सिद्धान्त में कोई शङ्का न करते। उन डाक्टरों ने ज्योंही इन को इस बात का अनुभव (गलत या सही) हुआ कि विषों की उत्पत्ति का मनुष्य शरीर में मूल कारण यह कीटाणु हैं उनके विध्वंश कर देने की विधि बता डाली और एक प्रकार से यह प्रमाणित करने की चेष्टा की कि शत्रु जब मिल जाता है तो उससे मुक्ति केवल उसके नष्ट ही करने से होती है अन्यथा नहीं। इस उतावलेपन की बतायी हुई विधि से बहुत सी शङ्कायें उत्पन्न हो जाती हैं कि इन डाक्टर महोदयों का सूक्ष्म दर्शक शीशे को हाथ में लेकर देखते समय शत्रु की तलाश रही ही होगी और यह प्राकृतिक आरोग्य विभाग की फौज के सिपाही वहां पर अपना विषविनाश का कार्य करते मिल ही गए होंगे। उस पर डाक्टर महोदयों ने बड़ी उतावलेपन से घोषित कर डाला कि जिन शत्रुओं की खोज थी वह मिल गये अब उन को नष्ट कर डाला जावे तो विषोत्पति स्वयं रुक जायेगी।

उस समय न्याय की शैली का भी उलंघन कर डाला गया और किंचित मात्र भी यह नहीं सोचा गया कि दोषी क्षेत्र में दोनों प्रकार की वस्तुऐं हो सकती हैं एक दोष वृधक और दूसरी दोष नाशक तो इन दोनों में से कीटाणु वहाँ क्या कार्य कर रहे थे दोष वृद्धता या दोष निर्माण। दूसरी यह बात कि इनके वहाँ से हटाने की कोई भी विधि नहीं सोची गई। केवल इनको एक बार नष्ट कर डालने से ही विष निवृत्त कार्य की पूर्ति समझ ली गई।

(११) हवन में प्रज्वलित अग्नि से अनेक प्रकार के पदार्थ जला कर धूम्र को घरों में देने की प्रथाः—यह प्रथा भारत वर्ष में हजारों वर्षों से बराबर चली आरही है और विभिन्न मतों के मनुष्य विभिन्न प्रकार की सामिग्रियों से हवन करते हैं। इस प्रयोग में बहुत सी विषनाशक औषधियें बहुत से पौष्टिक और सुगंधित पदार्थों के साथ मिलाकर अग्नि में जलाकर वहां की वायु में एक विशेष विषनाशक धूम्र पैदा कर लिया जाता है

यह विषनाशक धूम्र मनुष्यों के स्वांस द्वारा फेफड़ों में जाकर रक्त में औषधियों का संचार करके मनुष्यों को आरोग्य बना देता है। इस धूम्र से घरों की वायु का विष भी नष्ट हो जाता है। पृथ्वी, जल, वायु, तीनों में से अति सूक्ष्म वायु का ही स्वच्छ करना परमावश्यक समझा और इस कारण धूम्र का इस वायु को शुद्ध और दोषरहित करने में प्रयोग किया।

(१२) मकानों की दूषित और विषाक्त वायु को प्रज्वलित अग्नि पास के खुले चौक में जला कर स्वच्छ कर देनाः— यह एक विशेष खोज है जिसको लेखक ने अपने अनेक वर्षों के अन्वेषणों से खोजा है। हवन करने की क्रिया में अगनि में केवल विभिन्न पदार्थों को जलाकर उससे धूम्र उत्पत्ति करना ही नहीं है। यह धूम्र का उपयोग जिसका ऊपर के ग्यारवें खण्ड में वर्णन किया जा चुका है वह तो अग्नि का एक साधारण परिशिष्ट उपयोग है। प्रज्वलित अग्नि का वास्तविक उपयोग वायु शुद्ध करने की क्रिया में एक और महत्व शील क्रिया है जो केवल स्वयं प्रज्वलित अग्नि को मकानों के पास रखने ही से उत्पन्न हो जाती है। इस प्रज्वलित अग्नि के केवल थोड़ी देर खुले चौक या मैदान में रखने से ही पासके छतदार मकानों के भीतर की वायु स्वयं खिंच कर बाहर आजाती है और इस अग्नि की अंगीठी या ढेर के ऊपर एक कृत्रिम वायु शून्यता के स्तम्भ (चिमनी) द्वारा जो अंगीठी के ऊपर वायु मण्डल में स्वयं उत्पन्न हो जाता है ऊपर

वायुमण्डल में निकल जाती है और ऊपर के वायुमण्डल की स्वच्छ वायु मकान के अन्दर चली जाती है। यह अग्नि का वास्तविक प्रयोग है जिसका हमारे पूर्वजों को पूर्ण ज्ञान था और इसी कारण से प्रज्वलित अग्नि का प्रयोग हवन आदि के करने में किया गया और कियाजाता है यह वायु शोधक अग्नि का प्रयोग बड़ा महत्वशील और परमोपयोगी है। केवल आध घन्टे जलती हुई अग्नि का ढेर या अंगीठी सुबह और सायंकाल घरों के खुले चौकमें रख देनेसे ही बन्द मकानों की वायु स्वयं उलट पलट कर शुद्ध होजाती है। उस महत्वशील प्रयोग का पता अभी तक आधुनिक वैज्ञानिकों को तो भला है ही नहीं। आश्चर्य और साथ २ खेद से कहना पड़ता है कि हमारे हवन प्रथा के अनुयायी वैदिक धर्मी मित्रों या होली के जलाने को धर्म मानने वाले सनातन धर्मी मित्रों को भी संभवतः (लेखक के विचार से) नहीं है। लेखक ने अग्नि के इस महत्वशील प्रयोग का वर्णन बड़े विस्तृत रूप में इस पुस्तक के प्रथम भाग में कर दिया है। लेखक का दावा है कि इस अग्नि के प्रयोग से जितनी शीघ्र, जितनी पूर्ण रूप से और जितनी कम व्यय से घरों की विषाक्त वायु शुद्ध की जा सकती है उतनी दूसरे साधनों से नहीं की जा सकती। अब देखना यह है कि यदि यह खोज १०० प्रतिशत सत्य निकलती है और यदि इस खोज की सत्यता को आधुनिक वैज्ञानिकों को सत्य प्रमाणित कर दिया जाता है तो क्या फिर भी हमको यह बात सुननी पड़ेगी कि हम लोग आरोग्य शास्त्र में विज्ञान शून्य या विज्ञान से बहुत दूर हैं और यह कि प्राचीन भारतवासी आरोग्य विज्ञान भली-भाँति नहीं जानते थे।

(१३) विभिन्न खाद्य दालों, सब्ज़ियों को एक निर्णित मसाले से छौंक कर तैयार करना जैसे आलू सदैव ज़ीरे में छौंके जाते हैं। कढ़ी और काशीफल मेथी से, अरवी अजवायन से, उड़द की दाल हींग-ज़ीरे से, करेला सौंफ से। खोये के पेड़े और बूँदी के लड्डुओं में इलायची के बीजों का मिलाया जाना भी इसी नियम पर आधारित है

जो मसाला या औषधि जिस सब्ज़ी या दाल आदि का विघ्न (अधिक खा लेने के दोष को ठीक कर देने वाला) होता है। उसी मसाले को सावधानी के साथ उस सब्ज़ी के बनाते समय ही उसमें मिला दिया गया। यह है एक भारतीय रासायनिक और आरोग्य विज्ञान की क्रिया का एक उदाहरण।

(१४) खाना बनाने के स्थानों को साफ़ और स्वच्छ रखने की प्रथा और छूत की प्रथा। यह प्रथायें केवल स्वास्थ्य विज्ञान के ऊपर ही आधारित की गई थीं। हम मानते हैं कि कुछ अंशों में लोगों ने छूत की प्रथा का दुरुपयोग किया। जिससे यह इस आधुनिक काल में जिसको वैज्ञानिक काल पुकारा जाता है, विदेशियों की दृष्टि में एक हास्य विषय बन गया। यह केवल आकस्मिक घटना है। मूल आधार इस प्रथा का स्वच्छता ही है। स्नानादि द्वारा शरीर को स्वच्छ रखने के लिये भारतवर्ष में हिन्दू शास्त्रकारों ने नित्य प्रति स्नान आदि करने का आदेश शौचादि पंच नियमों द्वारा दिया है। शौचादि करके शरीर के सब अवयवों की स्वच्छता रखने पर बहुत सी पुस्तकें हमारे यहां मौजूद हैं।

(१५) जल, अग्नि, वायु का मनुष्यों के स्वास्थ और क्रियाओं पर व्यक्तिगत् और समकालीन प्रभावः— हमारे यहाँ वैशेशक और सांख्य दर्शन शास्त्रों में बहुत स्पष्ट शब्दों में पंच तत्वों के विधान में जल, अग्नि, वायु के लक्षणों आदि के विवरण में इन तीनों तत्वों के विलक्षण और विचित्र प्रभावों का वर्णन किया गया है उसमें से कुछ उदाहरणार्थ यहां देते हैं जैसा हम इस पुस्तक के प्रथम भाग के पहिले ही पृष्ठ पर विस्तृत रूप में वर्णन कर आये हैं। अग्नि का गुण उष्णता की उत्पत्ति करना, अपसारण करना, पृथ्वी, जल, वायु को गर्म और हल्की और फैलने वाली करके ऊपर की ओर उठाना है। जल का गुण शीतताकी उत्पत्ति करना, गलाना, संकुचित करना नीचे लेजाना और वायु का गुण क्रिया हीन भूस्थल पर स्वछंद रूप से बहना, अग्नि के

संपर्क में आने पर दाह क्रिया और उष्णता को तीव्र बना देना, और जल के संपर्क में आने पर शीतता को तीव्र कर देना आदि है।

अग्नि का मुख्य गुण उष्णता की उत्पत्ति करना है और जल का मुख्य गुण शीतता की उत्पत्ति करता है वायु का संपर्क जब २ और जहाँ २ पर अग्नि से स्वयं हो जाता है या मनुष्य कृत्रिम साधनों द्वारा करा दिया जाता है तो अग्नि की साधारण मौजूदा उष्णता में कई गुणी ऊँची मात्रा में तीव्रता उत्पन्न होजाती है जैसे फूकनी, धौंकनी या पंखे से अग्नि की अंगीठी या भट्टी में वायु संचार करके अग्नि में तीव्रता उत्पन्न करदी जाती है। जैसे स्वर्ण कार केवल एक चिराग़ की लौ पर एक छोटी सी टेढ़ी मुंह वाली नलकी से फूकें मारकर उस चिराग़ की लौ की गर्मी को इतनी ऊँची बना लेते हैं कि उस से सोने में टाँका आदि लगाया जा सके।

इसी प्रकार वायु का संपर्क जब २ और जहाँ २ जल से स्वयं हो जाता है या कृत्रिम साधानों द्वारा करा दिया जाता है तो जल की साधारण मौजूदा शीतता में कई गुणी ऊँची तीव्रता उत्पन्न हो जाती है।

जैसे मिट्टी के वर्तनों में जल पीतल ताँबे आदि के वर्तनों से शीघ्र और अधिक ठंडा हो जाता है। कपड़े के थैले आदि में गर्म जल तुरंत ठंडा हो जाता है और फव्वारों से गिर कर गर्म जल ठंडा हो जाता है। गर्म दूध को हलवाई बहुत ऊंचा उछाल कर एक ही मिनट में ठंडा कर लेता है। जब कहीं बच्चों के चोट लग जाती है तो उनकी माताएँ तुरन्त फूँक मारने लगती हैं। पहले उसी मुँह की वायु से फूँक मार कर अग्नि को प्रज्वलित करके चाय गर्म की जाती है और उसी मुँह की वायु से फिर फूँक मार २ कर प्लेट में उस चाय को ठण्डी की जाती है। भारतवर्ष की पुरानी कहावतों में वैज्ञानिक सिद्धान्त कूट २ कर भरे हुए हैं। इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि इन पुरानी कहावतों को भारतीय वैज्ञानिक महोदय बड़ी सावधानी से

इकट्ठी कर लें और इनका निरीक्षण करके उनके वैज्ञानिक भावों का भारतीय जनता में प्रचार करें।

एक कहावत है कि चढ़े हुए बुखार में हवा न लगाओ इस कहावत का वैज्ञानिक रहस्य यह है कि चढ़े बुखार में न जाने कब पसीना आजावे और पसीने में हवा लगने से इतनी शीतता उत्पन्न हो जायगी कि नमूनिया हो जाने का भय है। दूसरी कहावत यह है कि भीगा वस्त्र शरीर से शीघ्र ही अलग कर देना चाहिये और चाहे उसी खुली हुई हवा में कितनी देर तक कुवे या नदी पर स्नान करते रहो परन्तु इसके बाद भीगा वस्त्र एक मिनिट को भी शरीर पर मत रखो। भीगी चारपाई पर लेटना भी मना है इन दोनों क्रियाओं में भी शरीर की तीव्र शीतता से बचाने का तात्पर्य है। इसी सिद्धान्त पर खस की टट्टियें और पर्दे आदि मकानों के दरवाजों पर लगाकर भीतर की वायु ठण्डी कर ली जाती है।

उपरोक्त जल, अग्नि और वायु के प्राकृतिक प्रभावों की सत्यता पर ही लेखक ने अन्वेषणों द्वारा अपना निर्णय करके इस पुस्तक में दृढ़ शब्दों में घोषित किया है कि खाद्य पदार्थों में (पार्थिव बनास्पतिक पदार्थों में) जलवायु और अग्नि की उष्णता (मध्याह्न उष्णता जो ५०० और १५०० फैरन हीट के मध्याह्न हो) के समकालीन संपर्क से ही उन खाद्य पदार्थों में सड़न और गलन की क्रिया का सञ्चार होगा अन्यथा नहीं। और यह प्राकृतिक नियम की सत्यता हर समय और हर स्थान पर चाहे शरीर के अन्दर हो या बाहर हो एकसां लागू है। यदि इन तीनों में से (जल, वायु, अग्नि) कोई सा एक तत्व किसी कृत्रिम साधनों द्वारा अलग कर दिया जाय तो उस खाद्य वस्तु में सौ प्रतिशत स्वरक्षिता आजायगी और वह खाद्य पदार्थ न गलेगा और न सड़ेगा। इस बात को इस पुस्तक के प्रथम भाग में भलीभाँति विस्तृतरूप में वर्णन किया गया है। इस सिद्धान्त का यह रूप तो लेखक ने ही दिया

है परन्तु इसका आधार प्राचीन भारत के दार्शनिक ग्रन्थों में बतलाये हुये पञ्चतत्वों के विवरण ही हैं कोई नई आश्चर्यजनक बात नहीं।

इस खोज का रूप कैसा ही आश्चर्यजनक क्यों न बन गया हो आधार भारतीय प्राचीन विज्ञान ही है। हमारे और आधुनिक वैज्ञानिकों में अन्तर यही रहा कि भारतीय वैज्ञानिक प्राकृतिक नियमों की सत्यता के आधार पर जिसका ज्ञान उनको आजसे हजारों वर्ष पहिले हो चुका था लेकर चले हैं परन्तु आधुनिक वैज्ञानिक विशेषतः विदेशिक वैज्ञानिक केवल अपने अन्वेषणों पर ही पूर्णतः भरोसा रखते हुए चले हैं। इसी गलन और सड़न के सिद्धान्त पर जो पुस्तकें अनेक विदेशी वैज्ञानिकों ने लिखी हैं उनके अवलोकन से ही पता लगेगा कि इस अति सरल सिद्धान्त को खेंचतान कर कितना विशाल रूप दे दिया गया है और यदि एक विदेशी वैज्ञानिक ने गलन और सड़न (प्यूट्रीफ़िकेशन और फ़रमैण्टेशन) का कारण एक विशेष आकृति वाला कृमि माना है तो दूसरे वैज्ञानिक ने दूसरे प्रकार का कृमि इसका कारण माना है बड़े खेद की बात है कि इस सड़न और गलन के सरल और साधारण सिद्धान्त को जिसको भारतीय वैज्ञानिक केवल जल, वायु और अग्नि के समकालीन संसर्ग से उत्पन्न हुआ मानते हों उसको यह आधुनिक काल के वैज्ञानिक इतना लम्बा चौड़ा करके उनकी उत्पत्ति कृमियों द्वारा मानने और मनवाने की चेष्टा करें। कृमि उस सड़ी और गली हुई खाद्य वस्तु में अवश्य मिल जाते हैं परन्तु सड़न की क्रिया प्रारम्भ होजाने के बाद।

इस प्रकार के हजारों उदाहरण और हैं जिनसे भारतीयों के वैज्ञानिक ज्ञान का भली भाँति दिग्दर्शन किया जा सकता है। अब हम और उदाहरण नहीं देते हैं और अपने वक्तव्य के लेख को समाप्त करते हैं।

लेखकः—

अगस्त—सन् १९५१ **माधोप्रशाद**

प्रथम प्रकरण

इस पुस्तक के द्वितीय भाग में सर्वप्रथम लेखक की उन २७ नवीन खोजों का एकत्रित और निष्कर्षक रूप में (प्रथम प्रकरण) में वर्णन करते हैं जिनकी प्राप्ति लेखक ने अपने वैज्ञानिक अन्वेषणों द्वारा ३० वर्ष के लम्बे समय में की है और जो लेखक के मतानुसार सौ प्रतिशत सत्यता पर आधारित है और जिनका वर्णन विस्तृत रूप में इस पुस्तक के प्रथम भाग में किया जा चुका है। यह २७ वैज्ञानिक खोजें यहाँ पर इस कारण एकत्रित रूप में दोहराई जाती हैं कि भली प्रकार स्मरण रखी जा सकें और उनसे पूर्ण लाभ उठाया जा सके। यह सब खोजें विज्ञान पर निर्धारित और प्राकृतिक नियमानुकूल हैं और इनकी पुष्टि अनेक प्राचीन और आधुनिक भारतीय और विदेशी ग्रन्थों से की जा सकती है और बहुत-सी बातें इनमें से प्रयोगशाला में भी करके दिखाई जा सकती है फिर भी लेखक केवल सत्यता का खोजी होने के नाते किसी भी संशोधन को विशाल हृदय से मानने के लिये तैयार है जिसको कोई भी वैज्ञानिक महोदय प्रमाणित कर सकें। ऐसा करने से जनता को स्वयं लेखक की इन २७ खोजों की सत्यता सिद्ध हो जायेगी और इससे अथाह लाभ भी होगा। प्रमाणित हो जाने पर यह संशोधन इस पुस्तक के तृतीय भाग में प्रकाशित कर दिये जावेंगे।

हमारे ऊपर आधुनिक काल के सीखे हुए वैज्ञानिकों का यह आरोप है कि हम लोग आधुनिक विज्ञान से कदाचित् अनभिज्ञ हैं हमको इस आरोप को कुछ अंशों में मानने से इन्कार न करना चाहिये परन्तु यह भी साथ-साथ कह ही देना चाहिये कि अब यदि हम लोग आधुनिक विज्ञान से कुछ अंशों में अभी तक अनभिज्ञ ही है तो यह लक्षण केवल अच्छे ही हैं क्योंकि आधुनिक विज्ञान की बहुत सी बातें करते प्राकृतिक नियमों के सौ प्रतिशत प्रतिकूल हैं। आरोग्य सम्बन्धी

प्राकृतिक नियमों और उनकी सत्यता का पूर्ण ज्ञान रखना हर मनुष्य का मुख्य कर्तव्य है क्योंकि मनुष्य की उन्नति करने में सर्व प्रथम आरोग्यता ही है इसी कारण आरोग्य विज्ञान का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना परमावश्यक है ऐसा करने से हम अपने आपको न केवल स्वस्थ ही रख सकेंगे एवं अपना बहुत सा धन जो हम से स्वार्थ हित विज्ञान के नाम पर मिथ्या प्रचार करके व्यय कराया जाता है उसको बचा सकेंगे। लेखक एक सत्यता का खोजी और भारतीय वैज्ञानिक होने के नाते अपने इन २७ सत्यता की खोजों का जो उसने अन्वेषणों द्वारा प्राप्त की हैं भारतीय जनता के हितार्थ बस पुस्तक द्वारा प्रचार करना अपना कर्तव्य समझता है।

अब पहले प्रकरण में इन २७ खोजों का सूक्ष्म और एकत्रित रूप से वर्णन किया जाता है और दूसरे प्रकरण में कुछ और नवीन बातें वायु और जल की शुद्धि के सम्बन्ध में वर्णन करेंगे।

लेखक की २७ नवीन खोजें

(१) मनुष्यों के स्वास्थनाशकता का मूल कारण उनके रहन-सहन के स्थानों की गन्दगी और दूषित मल है जो केवल उनकी अज्ञानता और निरोग्य शास्त्र के सत्य नियमों की अनभिज्ञता के कारण उनकी असावधानी से उत्पन्न हो जाते हैं।

यही दूषित और गन्दे पदार्थ समय पर न हटाये जाने की दशा में विषों में परिणित हो जाते हैं और इतने विषैले बन जाते हैं कि मनुष्यों के रहने के स्थानों की जलवायु में मिल कर उनके स्वस्थ शरीर को रोगग्रहित बना देते हैं।

(२) दूषित मल और गन्दगी का एक परिमित मात्रा में मनुष्यों और उनके पालतू जानवरों के रहने के स्थानों में उत्पन्न होना अनिवार्य है क्योंकि आगे बताई हुई तीनों अवस्थाओं में दूषित और गन्दे मलों की उत्पत्ति मनुष्य जीवन के हितार्थ आवश्यक है और उनकी उत्पत्ति को निर्मूल नहीं किया जा सकता केवल इन दूषित पदार्थों का विनाश उनकी उत्पत्ति के साथ-साथ ही कर देना और रहने के स्थानों को इनके दूषित प्रभाव से बचाकर रखना ही आरोग्य शास्त्र का मुख्य आदेश है।

अवस्था नं० १ में जिसको खाद्य पदार्थों की सुरक्षा की अवस्था कहा जाता है उसमें मनुष्यों को अन्न और फलों को एकत्रित करके उनका भण्डार रखना ही

पड़ता है। अवस्था नं० २ में जिसमें अन्न शरीर के भीतर पाचन अवस्था में होता है और अवस्था नं० ३ में मनुष्य शरीर से निकले हुए मलमूत्र थोड़ी बहुत देर तक मनुष्य के रहने के स्थानों में रखना ही पड़ता है और इनमें जलवायु और अग्नि तीनों का समकालीन सम्पर्क थोड़ी बहुत मात्रा में ही हो जाता है जिससे गलन और सड़न होकर दूषित विषों की उत्पत्ति हो जाती है। अवस्था नं० २ में शीघ्र से शीघ्र खाने को शरीर में पचा कर उसमें से गन्दे और दूषित मल को बाहर निकाल कर अलग करना तो मनुष्य शरीर का कार्य ही है। अवस्था नं० ३ में मनुष्य और उनके पालतू जानवरों के शरीरों से निकले हुए दूषित मलों को एकत्रित करके नष्ट करने में थोड़ी बहुत देर हो ही जाती है जिससे यह मल और गन्दे पदार्थ जलवायु और अग्नि के समकालीन सम्पर्क में आकर और भी अधिक सड़ जाते हैं और दूषित मलों से विषैले मलों में परिणित हो जाते हैं। इस कारण गन्दगी और दूषित पदार्थों की उत्पत्ति को भूस्थल पर न तो बिल्कुल रोका ही जा सकता है और न निर्मूल किया जा सकता है परन्तु इनको शीघ्र से शीघ्र नष्ट करके विषैले पदार्थों में परिणित होने से अवश्य रोका जा सकता है और रोकना ही चाहिये। यदि इन गन्दे और दूषित पदार्थों को तत्काल उत्पन्न होते ही नष्ट कर दिया जावे या कम से कम रहने वाले स्थानों से तत्काल हटाकर जङ्गल आदि में लेजाया जावे और फिर नष्ट कर दिया जावे तो यह गन्दे और दूषित पदार्थ विषों में परिणित न हों और जल और वायु को दूषित न कर सकेंगे।

(३) मनुष्यों के स्वास्थ पर उपरोक्त विष दो प्रकार से आक्रमण करते हैं एक तो अपने शरीर ही के भीतर से (यह विष अवस्था नं० २ में स्वयं अपने शरीर की अस्वस्थता के कारण उत्पन्न हुए होते हैं) और दूसरे शरीर के बाहर से (यह विष अवस्था नं० ३ और १ से दूसरे मनुष्यों के कार्यों द्वारा उत्पन्न किये हुए होते हैं) यह दूसरे प्रकार के विष दूसरे मनुष्यों का मलमूत्र या अपने और दूसरे मनुष्यों के खाद्य पदार्थों के गलन और सड़न के कारण उत्पन्न होते हैं। जल और वायु से प्रवाहित होकर स्वस्थ शरीरों पर

आक्रमण करते हैं प्रथम प्रकार के विषों की उत्पत्ति का रोकना वैद्यों और डाक्टरों का कर्तव्य है और आरोग्य विज्ञान की सीमा से बाहर है। दूसरे प्रकार की विषोत्पत्ति की रोकथाम करना जिसको आधुनिक वैज्ञानिक 'स्पर्श' या 'इन्फैक्शन' के नाम से पुकारते हैं आरोग्य विज्ञान का जिस पर हमारी पुस्तकें लिखी जा रही हैं, मुख्योपदेश है।

(४) दूषित विषों से मनुष्य शरीर को बचाकर रखने के केवल दो ही उपाय हैं। एक तो तीनों अवस्थाओं में उत्पन्न हुए दूषित पदार्थों और मलों की उत्पत्ति को यथा-शक्ति घटाकर रखना और दूसरे उत्पन्न हुए मलों को उत्पत्ति के साथ-साथ ही नष्ट करते रहना या उन दूषित पदार्थों और मलों को व्याधि रहित करते रहना। तीसरी एक और परमावश्यक बात विशेष ध्यान देने योग्य यह है कि इन उत्पन्न हुए विषों से जल और वायु का सम्पर्क हटा कर रखना जिससे इन विषों के प्रमाणुओं को जलवायु एक स्थान से दूसरे स्थानों पर बहा कर या उड़ा कर न ले जा सकें।

(५) स्वास्थनाशक विषों की उत्पत्ति जो भूस्थल पर मनुष्यों के रहने वाली बस्तियों के जल और वायु को विषाक्त करती है वह केवल पार्थिव (वनास्पति तथा मांसिक

पदार्थ जैसे अन्न, फल, फूल, लकड़ी, भूसा, मांस, अण्डे, पाखाना, पेशाब आदि सब प्रकार के गलने और सड़ने वाले) पदार्थों में तीनों शेष तत्व यानी जल, वायु और अग्नि (पृथिवी और आकाश दो को छोड़ते हुए) का समकालीन एक साथ सम्पर्क करने से जो परिवर्तन उत्पन्न होते हैं और जो गलन सड़न उत्पन्न होती हैं उसकी बढ़ोतरी के बेक़ाबू हो जाने से होती है।

(६) पदार्थों की गलन और सड़न जो जल वायु और अग्नि (५०° से १५०° फ. ह) के समकालीन सम्पर्क से उत्पन्न होती है इन तीनों में से किसी भी एक तत्व के सम्पर्क को हटा देने से तुरन्त स्वरक्षिता हो जाती है। इस प्राकृतिक नियम का लाभ बहुत से विदेशी वैज्ञानिक हजारों प्रकार की खाद्य वस्तुओं को हवा बन्द टिनों में बन्द करके दूर २ के देशों में भेज कर उठा रहे हैं।

चौथा रसायनिक प्रयोग छोड़ कर खाद्य पदार्थों को सुरक्षित रखने के केवल तीन निम्नलिखित यान्त्रिक साधन हैं।

१—जल का सम्पर्क हटा देने से सुखावट (डैसीकेशन)
२—अग्नि का सम्पर्क हटा देने से बर्फ़ में रखना (रेफ़ीजैरेशन)
३—वायु का सम्पर्क हटा देने से शून्य में रखना (वैकुम)

इन तीनों प्रकार के यान्त्रिक प्रयोगों और चौथे प्रकार के रसायनिक प्रयोगों का प्राचीन भारतीयों को भली प्रकार ज्ञान था। इन चारों प्रकार के साधनों का प्रयोग प्राचीन भारतीय न केवल खाद्य पदार्थों के सुरक्षितार्थ ही करते थे जैसे अचार

५ ५ . ६
१२ (८न / २६६२६

और मुरब्बों आदि के बनाने में, अन्न को हवा पानी से बचा कर रखने में; सब्जियाँ को सुखा कर रखने में, पके हुए भोजन को ठण्डे स्थान में रखने में एवं अवस्था नं० २ में शरीर के रोग निवारणार्थ भी जल, वायु, अग्नि जिनको वैद्यक शास्त्र ने कफ, वायु, और पित्त के नामों से सम्बोधित किया है और जिन तीनों में से कोई सा एक या अधिक तत्व की शरीर में बढ़ोतरी का नाम रोग है उनको शरीर से कम करने या हटा देने में भी महान् निपुण थे।

(७) हर खाने पीने वाली वस्तुएँ अन्न, फल आदि (पार्थिव वनास्पतिक पदार्थ) अपने उत्पत्ति के समय से विनाश के समय तक तीन अवस्थाओं से निकलते हैं।

अवस्था नं० (१) खाद्य पदार्थों को सुरक्षित रखने वाली अवस्था को कहते हैं अवस्था का प्रारम्भ अन्न, फलादि के अपने पेड़ो की डाल से अलग होते समय से होता है और अन्त इस अन्न या फल को खाने के लिये मुंह तक ले जाने पर होता है।

अवस्था नं० (२) को स्वास्थिक अवस्था कहते हैं और यह अवस्था अन्न या फल आदि को खाने के क्षण से उसके शरीर से मल के रूप में बाहर निकलने के समय तक रहती है।

अवस्था नं० (३) को मल विनाशक अवस्था कहते हैं। यह अवस्था मल शरीर से निकलने के क्षण से उसके नष्ट किये जाने के समय तक रहती है।

आरोग्य विज्ञान के क्षेत्र में अवस्था नं० १ नाज और अन्य खाद्य पदार्थों को गलने और सड़ने से सुरक्षित रखना एक विशिष्ट कार्य है जिससे दो कार्यों की सिद्धि होती है। एक तो खाद्य पदार्थों की सड़ने और गलने से बचत होती है जिससे वह देश की खाने पीने के पदार्थों की कमी में सहायता मिलती है दूसरे उनकी गलन और सड़न से जो स्वास्थनाशक विषों की उत्पत्ति हो जाती है जिनसे जल और वायु विषाक्त होकर मनुष्यों को अस्वस्थ बना देते हैं उनसे छुटकारा मिल जाता है। अवस्था नं० २ इसके क्षेत्र में नहीं आती। अवस्था नं० ३ जो मल मूत्र और दूसरे गन्दे पदार्थ मनुष्यों और उनको पालतू जानवरों के शरीर से निकलते हैं उनको शीघ्र से शीघ्र मकानों से बाहर जङ्गल में ले जाकर नष्ट कर देना और उनको मनुष्य के रहने वाले स्थानों में कम से कम समय तक रखना और वह भी ढक कर जिससे वह जल वायु और अग्नि तीनों के समकालीन सम्पर्क से बचे रहें और अधिक काल तक सड़ न सकें जिससे वायु विषाक्त न हो यह सब कार्य आरोग्य विज्ञान के क्षेत्र में आते हैं। वैसे तो आरोग्य विज्ञान के क्षेत्र में केवल दो ही अवस्था आती हैं यानी अवस्था नं० १ और ३ और अवस्था नं० २ हमारी सीमा से सर्वथा बाहर है परन्तु हम उनता इस अवस्था के विषय में अवश्य कहेंगे कि मनुष्य शरीर को यदि स्वस्थ रखा जावे तो इसके मल मूत्र में इतनी विशेष दुर्गन्ध नहीं होती जितनी एक अस्वस्थ के मल और मूत्र में होती है। सारांश यह है कि स्वस्थ मनुष्य और उसके पालतू जानवर भूस्थल का जल वायु बहुत थोड़े से परिमाण में गन्दा करते हैं और जो अनिवार्य भी हैं क्योंकि ऐसा तो सम्भव ही नहीं कि मनुष्य अपने जीवन को बिना शारीरिक गन्दगी उत्पन्न किये स्थिर रख सके।

उपरोक्त अवस्था नं० १ और ३ पदार्थों की गलन सड़न को यथाशक्ति कम करने के लिये मेरी खोज नं० ६ में बतलाए हुए तीनों प्रकार के साधनों में से किसी भी एक का प्रयोग करने से यह सड़न और गलन रोकी जा सकती है।

अवस्था नं० २ के विषय में यह बात ध्यान देने वाली है कि जैसे अवस्था नं० १ और ३ में जल, वायु, अग्नि तीनों के इकट्ठा और विशेष समकालीन सम्पर्क को एक तत्व का सम्पर्क हटा कर गलन और सड़न की क्रिया को मनुष्य के हितार्थ रोका जाता है जिससे विषोत्पत्ति न हो या कम हो, अवस्था नं० २ में विपरीत इसके जल, वायु, अग्नि तीनों इकट्ठा समकालीन सम्पर्क पर्याप्त मात्रा में मनुष्य के शरीर रक्षा के हितार्थ रखने का प्रयत्न किया जाता है जिससे गलन और सड़न जिसका नाम इस अवस्था नं० २ में पाचन क्रिया या हाज़मा है पूर्णतः हो और भोजन शीघ्र पच

जावे और शरीर स्वस्थ रहे। इस अवस्था नं० २ में यह तीनों तत्व जल, वायु और अग्नि, कफ, वायु और पित्त के नाम से पुकारे जाते हैं।

तीनों अवस्थाओं में गलन और सड़न जब तक नहीं उत्पन्न होगी जब तीनों तत्वों जल, वायु और अग्नि का इकट्ठा समकालीन सम्पर्क खाद्य पदार्थों के साथ न होगा। अग्नि से तात्पर्य उष्णता से है। सम्पर्क में आई हुई उष्णता मध्याह्न डिग्री की यदि होगी अथवा ५०° से लेकर १५०° 'फैरन हीट' तक होगी यह सड़न गलन की क्रिया पर्याप्त वेग से होगी वरना रुक जायेगी। इसी कारण यह मान लिया गया है कि मनुष्य की शारीरिक उष्णता ९८·४ डिग्री की सब से अधिक वेग से अवस्था नं० १ और ३ में सड़न और गलन और अवस्था नं० २ में पाचन करती है। यही कारण है कि बुखार में पाचन क्रिया कम हो जाती है।

(८) जल, वायु और अग्नि तीनों तत्व पार्थिव (वनास्पतिक और मांसिक) पदार्थों के सम्पर्क में इकट्ठा और समकालीन आने पर यथानुरूप गलन और सड़न उत्पन्न करते हैं यानी विशेष मात्रा में तीव्र और न्यून मात्रा में मंद परिमाण में। अग्नि में विशेषता यह है कि तीव्र प्रकार की गलन और सड़न केवल मध्याह्न उष्णता में ही उत्पन्न होती है जो ५० और १५० डिग्री फैरनहीट के भीतर होती है। इधर ५०° पर और उधर १५८ पर गलन सड़न की क्रिया पूर्णतः रुक जाती है यही कारण कि दोनों के मध्याह्न उष्णता ९८·४° ।

फैरनहीट (मनुष्य के शरीर की उष्णता) पर यह गलन और सड़न की क्रिया बड़ी तीव्रता के साथ होती है और यही कारण है मनुष्य शरीर की पाचन शक्ति ज्वर में दूषित हो जाती है।

(९) भारतीय आरोग्य विज्ञान में सब से अधिक महत्व वायु की स्वच्छता रखने पर इस कारण से दिया गया कि पृथ्वी, जल, और वायु तीनों ही पदार्थ विषों से दूषित तो होते हैं परन्तु इन तीनों पदार्थों में पृथ्वी ही एक स्थानी होने के कारण अपने विष को भी एक स्थानी रखती है जिस से उसके दूषित प्रभाव पड़ोसी पड़ौसियों तक नहीं पहुँचते। जल में और वायु में चालकता होने के कारण यह दोनों पृथ्वी के उत्पन्न हुए विष को दूर २ भेज देते हैं इन दोनों में जल की चालकता तो एक परिमित प्रकार की और केवल पृथ्वी के स्थल पर ही फैलने वाली होने के कारण इतनी तीव्रता से विष को फैलाने वाली नहीं होती जितनी वायु की चालकता जो वायु के फैलने वाली लचकीली और दबने वाली होने के कारण से होती है।

यही कारण है कि भारतीय स्वास्थ वैज्ञानिक परम्परा से वायु की शुद्धि पर ही स्वास्थ की निर्भरता को मानते चले आये हैं और अब भी मानते हैं इनका अटल विश्वास है और बिल्कुल सत्य है कि वायु की स्वच्छता ही आरोग्यता का मूलमन्त्र है। तीनों प्रकार के विषों से (ठोस, तरल और गैसीय) पृथ्वी, जल, और वायु तीनों तत्व जो इन गन्दी वस्तुओं के सम्पर्क में आते रहते हैं विषाक्त हो जाते हैं जल और वायु से यह चारों ओर के वायु मण्डल में व्यापक हो जाते हैं।

(१०) भूस्थल पर रोग फैलाने वाले विषों की उत्पत्ति केवल मनुष्य और उसके पालतू जानवरों से ही होती है न किसी जङ्गली जानवर से होती है और न किसी कीड़ों, मकोड़ों, मक्खी, मच्छरों से होती है।

(११) दूषित पृथ्वी और दूषित जल तो दृष्टिगोचर हो सकते हैं परन्तु दूषित वायु, वायु के अदृश्य होने के कारण दृष्टिगोचर नहीं हो सकती। यही कारण है कि मनुष्य उन विषों के स्थित्व से अज्ञात बना रहता है और वायु में विष फैलाता रहता है और पृथ्वी और जल की दूषितता इतनी हानिकारक और अपकारी भी नहीं होती जितनी वायु की दूषितता।

(१२) प्रकृति का अटूट नियम है कि जहाँ पर मनुष्य इन विषों की उत्पत्ति तो करते रहते हैं परन्तु इनके निवारण करने का कोई यत्न नहीं करते वहाँ पर तीनों प्रकार के (ठोस, तरल, गैसीय) पदार्थों में उनके विषों के निर्वाणार्थ एक विशेष अवधि के उपरान्त अपनी प्राकृतिक कीटाणुओं की आरोग्यता फौज़ भेज कर विष निवारण का कार्य प्रारम्भ कर देती है यही कारण है कि गन्दे पदार्थों में विभिन्न प्रकार के कीड़े शीघ्र उत्पन्न हो जाते हैं।

(१३) प्रकृति का यह भी अटूट नियम हैं कि इस आरोग्य फौज़ के वर्दीदार सिपाही अपने सफाई करने वाले कार्य में निपुण और सब प्रकार के औजारों और कार्य सम्बन्धी सामग्री से लैस होते हैं जिससे वह अपना स्वच्छता उत्पन्न करने वाला कार्य बड़ी संलग्नता से न्यून से न्यून समय में

पूरा कर देते हैं और मनुष्यों को न्यून से न्यून असुविधा या कष्ट पहुँचाते हुए ही अपना कार्य करते हैं परन्तु जिन कार्यों में कष्ट पहुँचाना अनिवार्य है वहाँ पर यह सिपाही विवश हो जाते हैं। एक आवश्यक और अतिप्रसिद्ध बात इन कीटाणुओं का यह अभ्यास है कि यह कार्य को अधूरा छोड़कर नहीं हटते चाहे इनको किसी भी साधन से कार्य क्षेत्र से हटाया क्यों न जावे और चाहे कार्यक्षेत्र में कितने भी सिपाही मारे क्यों न जावें। हाँ एक स्थिति में यह अधूरा कार्य छोड़ कर हट जाते हैं और वह स्थिति जब उत्पन्न होती है जब मनुष्य की ओर से दत्तचित्तता से कोई रसायणिक औषधि डाल कर या किसी अन्य प्रकार से उसके कार्य को हटाने यानी उस विष का निवारण करने का कोई यत्न किया जाता है। यही कारण है कि फिनाईल और फ्लिट या डी-डी-टी छिड़कने से मक्खी, मच्छर आदि कीड़े-मकोड़े भाग जाते हैं यद्यपि उनकी यह अनुपस्थिति अल्पकालिक ही होती है।

इसी प्राकृतिक सत्यता से लाभ उठाते हुए पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने बहुत से रोगों के कीटाणुओं को अलग अलग छांट लिया है और इन प्रत्येक रूपों से विभिन्न प्रकार के कीटाणुओं के स्थित्व का सूक्ष्मदर्शक शीशों से निर्णय करके रोगों का निदान कर देते हैं।

दूसरा लाभ इन प्राकृतिक आरोग्य फौज के सिपाहियों से यह उठाया जा चुका है कि जिस दवाई के छिड़कने से यह सिपाही अपने कार्यक्षेत्र से कार्य को अधूरा छोड़कर भाग जावें वही उस विष की दवाई है इस सत्यता के आधार पर ही पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने चिकित्सा करने का लाभ उठाया है।

यह बात यहाँ पर फिर विचार करने योग्य है कि पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने एक ओर तो कीड़े, मकोड़ों, मक्खी, मच्छरों को विष फैलाने वाले, विषों का कारण और मनुष्य के प्राणघातक कह डाला है और दूसरे ओर उनके कार्यों की अटूट सत्यता पर इतना विश्वास है कि अपने निदान और चिकित्सा दोनों ही का आधार इनके अभ्यास की सत्यता पर निर्धारित कर दिया है।

पाश्चात्य वैज्ञानिकों के उपरोक्त दोनों प्रकार के साधन प्राकृतिक नियमों पर आधारित होने के कारण सत्य हैं और इनको हम भारतवासियों को विशाल हृदय से सत्य मान लेना चाहिये। केवल कीटाणुओं को विषों का कार्य ही मानना होगा कारण नहीं जैसा पाश्चात्य वैज्ञानिक केवल भूल के कारण मानते हैं क्योंकि यह बात हम को सूर्यके समान स्पष्ट है कि यह हर प्रकार के कीटाणु, मक्खी, मच्छर विषोत्पत्ति नहीं करते इसके प्रतिकूल विष निर्वाण ही करते हैं। किसी स्थान में सर्व प्रथम विष की स्थिति ही होती है उसके उपरान्त कीटाणु मक्खी, मच्छर आदि आते हैं इससे प्रथम नहीं। उपरोक्त दो प्रकार के लाभ तो रोगों के निदान और चिकित्सा करने में मनुष्यों ने इन कीटाणु, मक्खी, मच्छरों के अभ्यासों की प्राकृतिक नियमों की सत्यता से उठाए जिसका श्रेय लेखक के विचारानुकूल पाश्चात्य वैज्ञानिकों को ही है परन्तु तीसरा लाभ जो केवल इन कीटाणुओं, मक्खी, मच्छरों के केवल स्थित्व से उठाया जा सकता है वह यह है कि जहाँ पर इन कीटाणु, मक्खी, मच्छरों को देखो वहाँ पर निसंकोचता से मान लो कि वायु, जल और पृथ्वी अशुद्ध और विषाक्त है और इनकी शुद्धि होने की आवश्यकता है। सारांश में इन कीटाणुओं का केवल स्थित्व ही यह सम्बोधित करता है कि वहाँ पर जल, वायु विषाक्त है। यह विष के स्थित्व के जान लेने की विधि पुरानी विधि है कोई नया आविष्कार नहीं है।

(१४) मनुष्यों के रहन-सहन के स्थानों में मक्खी, मच्छर आदि कीटाणुओं का न होना या बहुत कम होना इस बात का संकेत करते हैं कि वह स्थान उस समय विष से मुक्त है और वहाँ पर पृथ्वी, जल, वायु सब शुद्ध है।

(१५) सड़न और गलन की तीन अवस्था होती हैं, हल्की, मध्यम और तीव्र।

(क) हलकी सड़न और गलन वह है जो पार्थिव खाद्य पदार्थों में नियमानुकूल जल, वायु और अग्नि के एक साथ के सम्पर्क से उत्पन्न होती है परन्तु बहुत ही न्यूनमात्रा में इन तीन तत्वों का सम्पर्क होता है और बहुत थोड़े समय तक। इस हलकी सड़न, गलन की अवस्था में बहुत मन्द वेग का विष उत्पन्न होता है जो साधारणतः वायु, धूप आदि से ही शोधित हो जाता है। इस अवस्था में प्रकृति अपनी कीटाणु फौज का प्रयोग नहीं करती।

(ख) मध्य प्रकार की सड़न और गलन में भी पार्थिव खाद्य पदार्थों में उपरोक्त अवस्था के समान जल, वायु, अग्नि का इकट्ठा सम्पर्क होता है और इतना होता है कि सम्पर्क देर तक रहता है और जल, वायु पर्याप्त मात्रा में होती है और अग्नि की उष्णता मध्याह्न ६८·४ फ. ह. डीग्री के समीप होती है। इसमें विषोत्पत्ति तीव्रता से होती है इस अवस्था में प्रकृति की कीटाणु, (मक्खी, मच्छर) आदि की फौज तुरन्त ही नियुक्त कर दी जाती यह अवस्था हलकी अवस्था के उपरान्त प्रारम्भ होती है।

(ग) तीव्र प्रकार की सड़न और गलन भी उपरोक्त दो अवस्थाओं की भाँति पार्थिव खाद्य पदार्थों में जल, वायु, अग्नि के इकट्ठे सम्पर्क से होता है परन्तु जल, वायु की मात्रा और भी अधिक परिमाण में होती हैं और अग्नि की उष्णता मध्याह्न उष्णता यानी ६८·४° फ. ह. डीग्री के बहुत समीप होती है जिससे सड़न, गलन बड़ी तीव्र गति से उत्पन्न होती है और बहुत हानिकारक तीव्र प्रकार के विषों की उत्पत्ति होती है इस अवस्था में प्राकृतिक कीटाणुओं की फौज बड़े वेग से कार्य करने लगती है और इस विष निर्वाण की क्रिया को पूर्ण करने के लिये जहरीले कीड़े जैसे सर्प और विच्छू तक आजाते हैं।

(१६) दूषित जल-वायु से जब कोई सा रोग उत्पन्न हो जावे तो दो कार्य करने आवश्यक हैं एक तो रोग के कारण का नाश करना यानी जलवायु में से उस विष की शुद्धि करना जिससे वह रोग उत्पन्न हुआ है। दूसरे रोगग्रसित मनुष्यों की यथेष्ट चिकित्सा करना।

(१७) रोगों के फैलने के मुख्य कारण यह हैं— अवस्था नं० १ में खाद्य पदार्थों को सुरक्षित रखने के अधूरे और अपूर्ण प्रयोग।

अवस्था नं० २ में मिथ्याहार-व्यवहार और अवस्था नं० ३ में मनुष्य और उनके पालतू जानवरों के मलमूत्रादि गन्दे पदार्थों के निवारण के अधूरे अपूर्ण और दोषी प्रयोग।

जैसे विष्ठा का बहुत समय तक मकानों में पड़ा रहना फिर गलियों में खुले स्थानों में पड़ा रहना और शीघ्रता से उसको नष्ट घृहों में लेजा कर नष्ट न करना। सड़ने वाले पदार्थों को शीघ्रता से मकानों से न हटाना और वहीं घण्टों या दिनों तक सड़ने देना।

(१८) मल-विष्ठा आदिगन्दे पदार्थोंको नष्ट दो प्रकार से किया जा सकता है एक तो अग्नि से जला कर (औक्सी करण) दूसरा जल से गला कर (सड़न गलन)

जलाने का साधन अति उत्तम है जिससे गन्दे पदार्थ तुरन्त ही अग्नि के प्रभाव से छिन्न-भिन्न होकर महान तत्वों में लीन हो जाते हैं इससे दूसरी श्रेणी में सड़न और गलन का साधन आता है जिसमें मल व विष्ठा को बाहर जङ्गल में भूमि में गढ़े खोद कर दबा दी जाती है जिससे उसका भूस्थल की खुली हुई वायु से संपर्क हट जाता है वैसे तो पर्याप्त मात्रा में वायु गढ़े में भी मल के साथ २ बन्द हो जाती है जिससे वहाँ उसको सड़ने में सहायता देती है। इस सड़न-गलन के साधन में प्रकृति की कीटाणु फौज ही गढ़ों में आनकर उसका विष निवारण करती है और उस विष्ठा को एक दूसरे उपयोगी पदार्थ के रूप में परिवर्तित कर देती है।

जहाँ तक पूर्ण नष्टता का सम्बन्ध है यह गलन-सड़न का साधन इतना पूर्ण और स्वास्थ रक्षक नहीं है जितना 'दहन' का साधन परन्तु खाद की उत्पत्ति और अन्य सुविधाओं के दृष्टिकोण से गढ़ों में दबाकर गला सड़ा कर खात में परिणित करने का साधन आजकल का प्रचलित साधन है जिसका प्रयोग आज-

कल सब ही देशों में लौकिक हो गया है। इस साधन का आधार केवल मल और गन्दे पदार्थों को किसी गड़े में इकट्ठा और वन्द करके सड़ा देना ही है भूस्थल की वायु मण्डल से उसका सम्पर्क थोड़े समय के लिये हटा दिया जाता है और इस गड़े के वन्द हो जाने से वहाँ का विष वायु मण्डल में नहीं फैलता और मल विष्ठा आदि को वहीं पर कीटाणुओं की फौज द्वारा नष्ट कर दिया जाता है।

इसी वन्द गड़ों में सड़ाने की विधि को कई एक रूप और दे दिये गये हैं जिनका सूक्ष्म विवरण नीचे दिया जाता है।

(क) एक रूप तो पुराने ढङ्ग के खतानों के गड़े जो हर शहर के वाहर म्युनिसिपल कमैटी की ओर से खोदे जाते हैं और जहाँ पर शहर भर की विष्ठा को एकत्रित करके यथाक्रम भर दिया जाता है और ऊपर से मिट्टी की मोटी तह दे दीं जाती है। चार-छै मास के उपरान्त इन गड़ों को खोला जाता है तो वहाँ पर केवल खाद बना हुआ मिलता है जिसको निकाल कर खेतों में भूमि को उपजाऊ वनाने में प्रयोग किया जाता है इस खाद में दुर्गन्ध वहुत थोड़ी-सी होती है जो मनुष्य स्वास्थ को कोई हानि नहीं पहुंचाती। (प्रथम भाग में पृष्ठ ३७ पर विधि नं० १ देखिये)।

(ख) दूसरा रूप यह है कि भूमि में कच्चे गड़े खोद कर इनमें घरों के पखानों से सीधे चीनी के नल लगा दिये जाते हैं और गड़ों को ऊपर से वन्द कर दिया जाता है। ऐसे कच्चे बने हुए गड़ों में पानी तो भूमि में शोषित हो जाता है और विष्ठा आदि गन्दे पदार्थों को प्राकृतिक कीटाणुओं की फौज खाकर मिट्टी में परिणित कर देती है। यह साधन केवल वहीं उपयोगी होता है जहाँ केवल गन्दे पदार्थों का परिमाण थोड़ा होता हो। (प्रथम भाग के पृष्ठ ३८ पर विधि नं० ५ देखिये)।

(ग) तीसरा रूप इसका आधुनिक काल के विष्ठागृह 'सैप्टिक टैन्क' है जिसमें पक्के हौज शहरों और वनी बस्तियों में मकानों के नीचे ही बना दिये जाते हैं और वायु सम्पर्क के लिये इसमें लोहे के नल लगा कर छतों के ऊपर निकाल दिये जाते हैं। इन पक्के हौजों में विष्ठा और जल मिलाकर डाल दिया जाता है और वहाँ पर विष्ठा में जल, वायु और अग्नि तीनों का एकसाथ सम्पर्क होने के कारण प्राकृतिक नियमानुकूल कीटाणु फौज वहुत बड़ी संख्या में उत्पन्न होकर उस विष्ठा के विष को नष्ट कर देती है और विषाक्त वायु नलों द्वारा वायु मण्डल में निकल कर विक्रण हो जाता है और जल नालियों

द्वारा वह जाता है यह साधन जितने लाभदायक और उपयोगी हैं उससे बहुत ज्यादा हानिकारक हो सकते हैं यदि इन हौजों से विषाक्त वायु रहने वाले मकानों में फूट निकले इस कारण से जहाँ २ पर ऐसे मल शोधक हौज मकानों के नीचे बनाए जावें वहाँ २ इनको बनाने में विशेष ध्यान इस बात पर देना चाहिये कि एक तो इनके भीतर मोटा प्लास्तर सीमेण्ट आदि का लगा कर इनकी शोषणता को रोका जावे दूसरे इसके जलवायु निकालने वाले नलों में रिसन न होनी चाहिये ।

यहाँ पर एक परमावश्यक बात फिर ध्यान देने योग्य है कि आधुनिक वैज्ञानिकों ने विष्टा और गन्दे पदार्थों के नष्ट करने में 'सड़न-गलन' के साधन की क्रिया में किस प्रकार प्राकृतिक नियमों की सत्यता का प्रयोग किया है और अपनी सब विष्टा और गन्दे पदार्थों को नष्ट करने का कार्य प्राकृतिक कीटाणु फौज को सौंप दिया है कितना बड़ा कार्य है जिसको केवल प्राकृतिक कीटाणु फौज हमारे हितार्थ नित्यप्रति कर रही है । यहाँ तो आधुनिक वैज्ञानिक मान ही जाते हैं कि यह कीटाणु फौज जिसको वे 'बैक्टीरिया' के नाम से सम्बोधित करते हैं उन सैप्टिक टैङ्कों का मल निवारण करने में आश्चर्यजनक दक्षता और तीव्रता से कार्य करती है । यह वही कीटाणु (बैक्टीरिया) है जिसको आज तक मनुष्यों के महान शत्रुओं की उपाधि दी हुई थी और जिसके लिये किसी को यह ध्यान किंचित मात्र भी न था कि एक दिन शीघ्र ही आयगा कि इनको मनुष्यों के मित्र की उपाधि भी साथ साथ देनी होगी ।

उपरोक्त दोनों विधियों के अतिरिक्त मल विष्टा आदि गन्दे पदार्थों को नष्ट करने की एक तीसरी विधि और है जिसको 'विक्रण' विधि के नाम से सम्बोधित किया जाता है । वैसे तो यह विक्रण विधि गलन और सड़न की विधि के ही अंतर्गत आजाती है परन्तु उस का एक विशेष रूप होने के कारण हम इसको तीसरी अनाश्रित विधि ही मानते हैं । क्योंकि भारतवर्ष के ग्रामों और शहरों के एक बड़े भाग में यह क्रिया प्राचीन काल से प्रचलित है और बहुत सस्ती और वैज्ञानिक स्वच्छता प्रदान करने वाली है । इस विधि का पूर्ण विवरण प्रथम भाग के पृष्ठ २६-३० पर देख लीजिये । इस विक्रण क्रिया का सिद्धान्त यह है कि बहुत से वायु-जल अथवा पृथ्वी में थोड़ी सी मात्रा में (मात्रा का परिमाण वैज्ञानिक तजुरबों से मालूम करिये) विषाक्त वायु जल या मिट्टी मिला दी जावे । इतनी न्यून मात्रा में मिलाया जाता है कि वह बड़े परिमाण के वायु जल और पृथ्वी के समुदाय इससे मनुष्यों के स्वास्थ नाशक नहीं बनते जैसे एक मात्रा तक

(·०४ प्रतिशत) कार्बनडायकसाइड वायु मनुष्यों के स्थान के वायु मण्डल में मनुष्यों के स्वास्थ को हानिकारक नहीं होती। ऐसा करने पर इस थोड़े से विषाक्त मल की स्वच्छता वायु जल और पृथ्वी में से स्वयम् धूप और वायु से ही हो जाती है और थोड़े से समय में ही हो जाती है। यह विधि भी हमारे भारतीय पूर्वजों की निकाली हुई अत्यन्त हितकारी विधि है।

(१९) जिस स्थान को स्वच्छ करना हो और मक्खी, मच्छर और दूसरे प्रकार के कीटाणुओं से मुक्त करना हो तो वहाँ के पृथ्वी, जल, वायु तीनों तत्वों को विषों से मुक्त करके स्वच्छ कर दीजिये ऐसा करने से सर्व प्रकार के कीटाणु मक्खी, मच्छर आदि तुरन्त और स्वयम् उस स्थान से हट जायेंगे और तबतक नहीं आवेंगे जबतक फिर विषोत्पत्ति न कर दीजावे।

पृथ्वी का स्थूल विष हटाना इतना दुर्लभ नहीं है जितना जल का स्वच्छ करना और जल का स्वच्छ करना इतना दुर्लभ नहीं है जितना वायु को विष मुक्त और स्वच्छ करना। इसी क्रम से गन्दे पदार्थों का ठोस विष इतना हानिकारक नहीं होता जितना तरल पदार्थों का विष और यह तरल विष उतना हानिकारक नहीं होता जितना वायु का विष। ठोस विषाक्त मल उस स्थान से हटा कर दूर गढ़े में दबाकर साफ किया जा सकता है। जलीय विषाक्त मल वहाँ से बहाकर किसी नदी नाले में डाल कर साफ़ किया जा सकता है और विषाक्त वायु प्रज्वलित अग्नि की अङ्गीठी या अलाव जलाकर साफ़ की जा सकती है या उलटे बिजली के पङ्खे, आदि अन्य प्रयोगों से।

(२०) किसी भी प्रकार के कीटाणु मक्खी, मच्छर आदि मनुष्यों के हानिकारक कोई विष नहीं फैलाते और न ही कोई क्रिया मनुष्यों के हानि पहुँचाने के लिये करते हैं। यदि कई कीटाणु और मच्छरों आदि में विष होता है वह केवल दूसरे ही कार्यों के लिये होता है

मनुष्यों को हानि पहुँचाने के लिये नहीं होता ।

मनुष्यों को इनके विष से हानि केवल मनुष्यों की त्रुटियों असावधानता और अनभिज्ञता के कारण पहुंचती है जैसे उदाहरणार्थ कोई यह कहदे कि सरकारी सफ़ाई के महकमे के सिपाही के हाथ में जो तीव्र फिनाइल की बोतल उसने देखी है वह मनुष्यों को हानि पहुंचाने के लिये थी या जो उनके पास तेज और पैने औजार कार्य करने के हितार्थ थे उन से मनुष्यों के शरीरों में चोटें लग सकती हैं या लग चुकी हैं । इसी प्रकार से यदि किसी कीटाणु, मक्खी, मच्छर या किसी अन्य जानवर से हानि पहुंच जाती है वह भी मनुष्य की अज्ञानता और असावधानता से पहुंचती है। जैसे किसी कपड़ा बुनने की या किसी और प्रकार की मशीन चल रही हो और कोई अनभिज्ञ मनुष्य उस में अपना हाथ देकर कुचल वाले ।

(२१) हर प्रकार के कीटाणु, मक्खी और मच्छर आदि केवल आवश्यकता पड़ने पर ही उत्पन्न होते हैं या दूसरे स्थान से आते हैं। वस्तुतः विष की उत्पत्ति होने के उपरान्त आते हैं और विष निवारण करते हैं। उन मक्खी, मच्छर या अन्य प्रकार के कीटाणुओं को कम करने या पूर्णतः हटाने का केवल उपाय उस विष को जिसके नाश करने के लिये यह आते हैं मनुष्यकृत उपाय से वहाँ से कम कर देना या पूर्णतः हटा देना है।

(२२) घरों या दूसरे रहने वाले स्थानों की वायु बहुधा भूस्थल के समीप वाली तहों में ही विषाक्त पदार्थों के सम्पर्क में आने के कारण विषैली हो जाती है। इसको मकानों से केवल दो ही उपायों से शुद्ध किया जा सकता है एक तो अग्नि को समीप के खुले हुए चौकों में

जलाकर भीतर की वायु खैंच कर निकालने से, दूसरे बिजली आदि के उलटे पङ्खों से (एगज़ास्ट फैन द्वारा) वायु को धकेल कर बाहर निकालने से। हर प्रज्वलित अग्नि के ढेर के ऊपर जो भूस्थल पर जलाया जाता है भूस्थल के समीप वाली वायु की तह में शून्य का गोलाकार कूप या चिमनी बन जाती है जिसके अन्तर्गत चारों ओर की भूस्थल की वायु आकृषित होकर ऊपर की ओर निकल जाती है और ऊपर से उतर कर शुद्ध वायु उसका स्थान ले लेती है। इस मत के अनुसार यह सर्व सिद्ध नियम है कि हर प्रज्वलित अग्नि के ढेर जो रहने के मकानों के समीप या खुले हुए चौकों में जलाए जाते हैं घरों की बन्द अशुद्ध वायु को स्वच्छ करते हैं।

अग्नि के प्रदीपन से जो वायु मण्डल की ओक्सीजन नष्ट हो कर कार्बनडाईऔक्साइड बनती भी है उस से जो हानि होती है वह केवल नाम मात्र ही है परन्तु लाभ अकथनीय मात्रा में होता है।

(२३) प्राचीन भारतवासी अशुद्ध वायु को स्वच्छ बनाने में अग्नि का दुहरा उपयोग करते थे यानी प्रथम तो सादी अग्नि को अङ्गीठी में प्रज्वलित करके उस में आकर्षण द्वारा घरों की बन्द और विषाक्त वायु को खैंच कर अङ्गीठी के ऊपर बनी हुई शून्याकार चिमनी से ऊपर वायु मण्डल में निकाल देने से और फिर उसी अग्नि पर कुछ वायु शोधक रोगनाशक और सुगन्धित

हवन की सामग्री को जलाकर उसके धूम्र को बन्द घरों में धकेल देने से।

(२४) क्योंकि अवस्था नं० १ और ३ में पार्थिव खाद्य पदार्थों में जल, वायु, अग्नि के इकट्ठे सम्पर्क से गलन और सड़न उत्पन्न हो जाती है। इसी नियमानुसार सब प्रकार के नाज, फल, फूल, मिठाई और अन्य खाद्य पदार्थों को जल, वायु, अग्नि तीनों में से किसी एक को कृत्रिम साधनों से निकाल देने से स्थाई सुरक्षिता पैदा हो जाती है।

१—वायु निकालकर शून्याकार (VACUUM) करके टिनों और बक्सों में विदेशों से हजारों प्रकार के खाद्य पदार्थ और सिगरटें तम्बाकू और चाय आदि आते हैं। प्राचीन भारतवासियों को इसका भली प्रकार से ज्ञान था।

२—जल निकाल कर (DESICATION) सुखा कर सैकड़ों प्रकार के फल और फूल सुखाकर रखे जाते हैं विदेशों से सैकड़ों प्रकार की खाद्य वस्तुऐं आकर बिकती है और भारतवर्ष में भी बहुत प्रकार के फल फूल सुखा कर वर्षों तक रखे जाते हैं जैसे कचरी, करेला, साग आदि इसके अतिरिक्त हजारों प्रकार की औषधियां भी कई २ वर्षों सुखा कर रखी जाती हैं।

३—अग्नि निकालने से तात्पर्य यह है कि उष्णता कम करके यानी बर्फ में रखकर खाद्य पदार्थों को अपरमित समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है। इस नियम का भी भारतवासियों को भली प्रकार से ज्ञान था।

(२५) अग्नि में अनेक सुगन्धित, रोगनाशक और पौष्टिक पदार्थ जलाकर उनके विभिन्न प्रकार के धूम्रों से

अनेक प्रकार के वायु के विषों का निर्माण किया जा सकता है और अनेक रोगों की चिकित्सा भी की जा सकती है ।

यह धूम्र विज्ञान भारत देश की बहुत प्राचीन कला हैं अभी तक विदेशी वैज्ञानिकों ने इसके महत्व को नहीं समझा है ।

(२६) प्रकृति ने किसी भी ज़हरीले जानवर या कीड़े में कोई विष मनुष्यों को हानि पहुँचाने के लिये नहीं बनाया विशेषतः उन कीटाणुओं में जो घरों में पैदा हो जाते हैं । जिन २ कीटाणुओं में यह विष होते भी हैं वह किसी दूसरे ही कार्यों के प्रयोजनार्थ होते हैं और प्रकृति की ओर से इस बात की बड़ी सावधानी रखी गई है कि यह कीटाणुओं के विष मनुष्यों को हानि न पहुँचावें । फिर भी जहाँ मनुष्य इन ज़हरीले कीटाणुओं द्वारा अपने को हानि पहुँचा लेता है वहाँ उसकी असावधानी ही मुख्य कारण होता है ।

यह ज़हरीले कीटाणु और जानवर विष निर्वाण के कार्यों की मनुष्य हितार्थ बड़ी २ ज़टिल समस्याओं की पूर्ति करते हैं ।

मनुष्यों को विषैले कीटाणुओं से बचाने के हेतु प्रकृति ने इन विषैले कीटाणुओं में मनुष्य का भय उत्पन्न कर दिया है जिस कारण वे मनुष्य से भय भीत रहते हैं और यथाशक्ति उसके सम्पर्क में नहीं आते और मनुष्य के घरों में मनुष्य के पैदा किये हुये विषों का निर्माण करने के कर्तव्य का पालन करते हुए भी

अपने आपको मनुष्यों से अलग रखते हैं । साधारण विषैले कीटाणु जैसे बर्र ततय्या आदि जिनको अपने कर्तव्य पूर्ति के लिए मनुष्यों के रहने के स्थानों में ही आना पड़ता है उनके उड़ने में प्रकृति ने एक प्रकार का शब्द पैदा कर दिया है जिस से मनुष्य उस प्रकृति के स्वास्थ विभाग के सिपाही के विषैले हथियारों से उसका शब्द सुन कर अपने आप को बचाले । इन विषैले कीटाणुओं का विस्तृत विवरण हम इस पुस्तक के तीसरे भाग में प्रकाशित करेंगे । यहाँ केवल इतना सङ्केत मात्र बता छोड़ते हैं कि बर्र उन गन्दे स्थानों में पैदा की जाती है जहाँ गन्दे और सड़े हुए पदार्थों में चिकनाई होती है और ततय्ये वहाँ पैदा किये जाते हैं जहाँ गन्दे पदार्थों में मिठाई मौजूद होती है । यहाँ पर एक आवश्यक बात यह भी बता दी जाती है कि प्रकृति की इस स्वास्थ रक्षक फौज के नियम इतने कड़े और अटल हैं कि यथोचित चेतावनी देने के पश्चात् भी यदि मनुष्य इन सिपाहियों से सावधान नहीं रहता उनको यदि इन के स्वास्थ रक्षक कार्य सम्बन्धी हथियारों से कोई क्षति पहुंच जाती है तो वे कोई खेद प्रकट नहीं करते और निसङ्कोच अपने कार्य में सँलग्न रहते हैं ।

(२७) किसी २ स्थानों में कभी २ थोड़े समय के लिये मक्खियें शुद्ध और साफ़ घरों में भी प्रायः क्यों आजाती हैं इसका कारण अड़ोस पड़ोस की गन्दगी ही है । यह प्रकृति की स्वास्थ फ़ौज के सिपाही अपना विष निर्वाण कार्य करने के लिये पड़ोस की गन्दगी पर नियुक्त किये जाते हैं वहाँ से अवकाश मिलने या किसी क्षणिक बाधा के उत्पन्न हो जाने पर पड़ोसी के मकान में भी कभी २ चले जाते हैं जैसे फौजें किसी रणक्षेत्र में अड़ोस पड़ोस की जगह घेर लिया करती हैं ।

परन्तु ऐसी अवस्था में यह अपने कार्यक्षेत्र में ही अधिक समय लगाते है क्योंकि इन सिपाहियों के पास व्यर्थ खोने के लिये समय नहीं होता और न वे स्वच्छ स्थानों में कोई बाधा ही पहुंचाते है ।

द्वितीय भाग

द्वितीय प्रकरण

इस द्वितीय प्रकरण में हम केवल थोड़ा सा वायु के सम्बन्ध में वर्णन करके इस पुस्तक के द्वितीय भाग को समाप्त करेंगे और शेष बातों पर आगे तृतीय भाग में जब भी यह प्रकाशित किया जावेगा लिखेंगे। जैसा पीछे कई बार बताया जा चुका है कि मनुष्यों के रहने वाले स्थानों में आरोग्यता केवल 'जल' और 'वायु' को स्वच्छ रखने से ही प्राप्त हो जाती है। उनके अतिरिक्त और तीसरे कारण की ओर ध्यान देना भी व्यर्थ होगा। यही भारतीय वैज्ञानिक सिद्धान्त है और इसकी पुष्टि अनेक प्राचीन आरोग्य शास्त्र के विद्वानों जिसमें यूनानी विद्वान् भी सम्मिलित हैं, की है। कीटाणुओं या बैक्टीरिया आदि के आरोग्यता का कारण होने आदि का सिद्धान्त न केवल शिशु सिद्धान्त ही है एवं बेबुन्याद और लचर भी है जो प्राकृतिक नियमों की सत्यता की कसौटी पर कदापि नहीं ठहरता। वातावरण की स्वच्छता रखने के लिये जल को स्वच्छ रखने में हमको इतनी कठिनाई नहीं पड़ती है क्योंकि एक ओर तो जल की स्वच्छता के सम्बन्ध में मनुष्य यह भलीभाँति समझते हैं कि पीने के जल कुओं या ज़मीन के भीतर लगाये हुये नलों में से ही लिया जावे और इन दोनों का जल पहिले ही प्राकृतिक नियमों से पर्याप्त स्वच्छता लिये हुए होता है। दूसरी ओर यदि कहीं नदियों या अन्य खुले हुए स्रोतों से पीने के लिये जल लिया भी जाता है तो उसकी स्वच्छता पर्याप्त अंश में आधुनिक वैज्ञानिक विधियों या यन्त्रों द्वारा जनता या राज्य की ओर से कर दी जाती है तीसरे यदि कहीं आकस्मिक रूप में बेबशी में किसी स्थान से मनुष्य को अशुद्ध जल का प्रयोग भी करना पड़ जाता तो मनुष्यों को उसका ज्ञान होने के कारण वे शीघ्र ही उसके दूषित प्रभाव के निवारणार्थ कोई उपाय स्वयं ही कर लेते हैं।

चौथे यदि किसी स्थान का जल दूषित भी हो जावे तो जल में वायु की तुलना में बहुत कम चालकता होने के कारण उसके दोष एक स्थानीय से ही रहते हैं। वायु के दोषों के समान दूर २ व्यापक नहीं हो जाते वायु को पर्याप्त अंश में शुद्ध और स्वच्छ रखने के लिये हमारे पथ में अनेक कठिनाइयें और बाधायें हैं। वैसे तो यह एक ही बात बाकी रह जाती है जिसके हल कर डालने से हमको पूर्ण आरोग्यता की प्राप्ति हो जाती है परन्तु यह एक ही बात ऐसी है जिसकी ओर हमको पूर्ण दत्तचित्तता से ध्यान देना होगा और ध्यान देना भी केवल तब फलदायक होगा जब हम पहिले इसके (वायु के) रूप, लक्षण, क्रिया, गुणों आदि से अपने आपको भली प्रकार परिचित कर लें। इस वायु के रूप, लक्षण, क्रिया और गुणों आदि के यथार्थ ज्ञान प्राप्ति के लिये थोड़ा-सा संयम करके एक ओर तो अपने प्राचीन ग्रन्थों में विशेषतः दर्शनशास्त्रों में वर्णित सूत्रों का निरीक्षण करना होगा दूसरी ओर आधुनिक काल के विज्ञान के वर्णित साधारण यथार्थ विज्ञान के नियमों से भी परिचित होना होगा। तीसरे साथ २ प्राकृतिक नियमों का भी ज्ञान रखना होगा। इन तीनों प्रकार का ज्ञान रखते हुए जब हम इस परमावश्यक तत्व वायु का निरीक्षण करेंगे तो शीघ्र ही हमको इसके प्रति सत्य ज्ञान की प्राप्ति होगी और इन सब प्रयत्नों से लाभ यह होगा कि हम स्वयं अपने घरों की दूषित वायु को स्वच्छ करने की सैकड़ों विधियें निकाल लेंगे और उससे पूर्ण लाभ उठायेंगे। इस बात को हमारे यहाँ पर दोहराने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती कि भारतीय आरोग्य वैज्ञानिकों ने इसी कारण पार्थिव और जलीय दूषित पदार्थों की स्वच्छता पर इतना जोर नहीं दिया और इनके हेतु फिनाइल और पाउडर आदि के प्रयोग नहीं किये जितना वायु की स्वच्छता पर जोर दिया है और जिसके लिये अनेक प्रकार के वायु शोधक अग्नि के प्रयोग किये। उनको इस बात का पूर्णतः ज्ञान था कि वह वायु ही है जो स्वयं अपने (वायुके) दूषित प्रमाणुओं के अतिरिक्त जल और पृथ्वी के दूषित प्रमाणुओं को

—

भी आसानी से एक स्थान से दूसरे स्थान पर उड़ा लेजा कर दोष को दूर २ के स्थानों में व्यापक कर देती है।

वायु एक द्रव्य पदार्थ है जो लगभग ५० मील की गहराई में पृथ्वी के चारों ओर लिपटा हुआ है। यह एक क्रियाहीन (यह नाम इस कारण दिया गया कि इसकी स्वयं कोई क्रिया नहीं होती। जल और अग्नि के सम्पर्क से अनेक क्रियाओं की उत्पत्ति होती है) पदार्थ है अग्नि के सम्पर्क में आने पर अग्नि की दहन क्रिया और उष्णता को अति तीव्र कर देती है और जल के सम्पर्क में आने पर जल की क्रिया शीतता को तीव्र कर देती है। इसके अतिरिक्त यह महत्वशील पदार्थ भूस्थल पर शीतता और उष्णता को एक स्थान से दूसरे स्थानों पर लेजा कर वितरण कर देती है। सबसे महान कार्य इसको मनुष्यों और जानवरों को श्वास द्वारा पर्याप्त वायु अंशों को बाहर से उनके शरीरों में ले जाना और शरीरों के भीतर से दूषित वायु के अंशों को बाहर खैंच लाना है और दूसरा महान कार्य समुद्रों के ऊपर से जलवाष्प का उड़ाकर ले आना और उसको बर्फ और वृष्टि के रूप में देशों के ऊँचे पहाड़ों पर छोड़ देना है। इनके अतिरिक्त भी बहुत से कार्य यह वायु मनुष्यों के जीवन यापन हितार्थ भूस्थल पर करती रहती है। शब्द की चालकता केवल वायु ही के ऊपर आधारित और निर्भर है क्योंकि शून्य में शब्द चालकता नहीं होती वायु में अन्य गुणों के अतिरिक्त जो सूक्ष्म प्रमाणुओं (जल और पृथ्वी के प्रमाणुओं को) को उड़ा ले जाने की सामर्थ्य है और जिस शक्ति के कारण ही भूस्थल पर मनुष्यों के जीवन हितार्थ सैकड़ों प्रकार की उपयोगी घटनायें होती हैं उस शक्ति के कारण ही केवल रहने वाली बस्तियों में कुछ मनुष्यों की अज्ञानतावश उत्पन्न किये हुए विषों के कणों को भी उसी प्रकार अपने प्राकृतिक नियमानुसार एक स्थान से दूसरे स्थान पर लेजा कर वितरण कर देती है और जब-जब और जहाँ २ इन विषों और दूषित पदार्थों के ढेर बड़े २ होते हैं वहाँ पर इनमें से

निकले हुए विषों के प्रमाणु अड़ोस-पड़ोस के रहने के स्थानों में उड़कर चले जाते हैं और वहाँ के वायु मण्डल को भी उतना ही दूषित कर देते हैं जितना कि ढेर वाले स्थानों का वायु मण्डल दूषित था।

प्राकृतिक नियमानुसार वायु इन सब दूषित पदार्थों का स्वयं निर्वाण कर देती है परन्तु ऐसा करने में थोड़े समय की आवश्यकता पड़ती है और प्रकृति के नियमानुकूल वायु में विषों को वितरण करके निर्माण करने की क्षमता तो है परन्तु इस वायु की शक्ति पर निर्भर नहीं रहा जा सकता विशेषतः ऐसी अवस्था में जहाँ पर मनुष्यों की विष उत्पन्न करने और उसको बढ़ाने की क्रिया बड़ी तीव्रता से चल रही हो। ऐसी उतावलेपन की अवस्था में भी वायु मण्डल की वायु को स्वच्छ रखने के लिये केवल मनुष्य कृत कृत्रिम उपाय और साधन ही हो सकते हैं जिनके द्वारा कृत्रिम उपायों से वायु में फैले हुए विषों का निर्वाण किया जा सकता हो—यदि ऐसा मनुष्यों की ओर से न किया गया तो फिर प्रकृति अपनी कीटाणु फौज इन विषों को नष्ट करने के हितार्थ युनिक्त कर देती है जिसको हमारे आधुनिक वैज्ञानिक मित्र वैक्टीरिया के नाम से सम्बोधित करते हैं।

प्राचीन भारतीयों ने वायु शुद्धि के लिये अग्नि की अङ्गीठियों को मकानों के खुले हुए चौकों में दिन में एक या दो बार रखकर केवल वायु शून्यता की चिमनियें इन अङ्गीठियों के ऊपर वायु मण्डल में उत्पन्न करके उनके द्वारा विषाक्त वायु को ऊपर आकाश में निकाल कर और इस प्रज्वलित अग्नि में कुछ विष नाशक और सुगन्धित पदार्थों को जलाकर उनके धुओं से स्वच्छता उत्पन्न करने के महत्वशील साधन खोज निकाले थे। इस आधुनिक काल में भी इन साधनों की सत्यता उतनी ही है जितनी प्राचीन काल में थी परन्तु इस समय हम इन अपने साधनों को ही भूल बैठे हैं और इधर-उधर के व्यर्थ चक्करों में पड़ते जा रहे हैं।

वायु मण्डल की साधारण वायु चार प्रकार से क्रबद्ध की जा सकती है।

(१) घनित्व के आधार पर कि वायु का घनित्व साधारण वायु मण्डल का घनित्व है जिसमें वायु का बोझ लगभग १५ पौण्ड प्रति चटाई इञ्च होता है उससे कम है या शून्य होने के कारण बिल्कुल नहीं है या साधारण वायु मण्डल की वायु के घनित्व से बढ़ कर है।

(२) जलवाष्प परिपूर्णता के आधार पर कि प्रत्येक वायु में कितने अंशों में जलवाष्प विद्यमान है और उस वायु में कितने अंश में जलवाष्प को उठाने की क्षमता स्थिति है।

(३) तापक्रम के आधार पर कि प्रत्येक वायु में कितनी उष्णता या शीतता विद्यमान है और यह कि यह स्थिति उष्णता या शीतता तुलना में उसी स्थान की उसी समय की साधारण वायु मण्डल से (भूस्थल से छूती हुई वायु मण्डल की तह से) अधिक उष्ण है या ठण्डी।

(४) स्वच्छता के आधार पर कि प्रत्येक वायु में कितनी मात्रा में दोषी या उपयोगी स्वास्थनाशक या स्वास्थवर्द्धक पृथ्वी, जल या वायु (तीनों में से एक, दो या तीनों इकट्ठे) के कण मिले हुए हैं या वायु बिल्कुल स्वच्छ है और आधुनिक विज्ञान के आधार पर केवल ७९ प्रतिशत नाइट्रोजन और २० प्रतिशत औक्सीजन आदि लिये हुए हैं।

अब हम यहाँ साधारण जनता के हितार्थ जो वैज्ञानिक व्याख्या नहीं समझ सकते सरल शब्दों में एक दृष्टान्त देकर वायु के चारों प्रकार के भेद समझाने का प्रयत्न करते हैं।

एक साधारण मनुष्य का छोटा सा शहर का मकान जिसमें चारों ओर चार कमरे बीच में खुला चौक एक ओर दहलीज़ जिसमें बाहर से आने-जाने का मुख्य दरवाजा लगा हुआ है। चारों ओर दो २ खिड़कियें भी हैं दहलीज़ की एक ओर रसोईघर, कचा भण्डार आदि हैं दूसरी ओर पखाना और उसके नजदीक ही एक स्नानागृह बना हुआ है। मकान के बाहर दहलीज़ को मिली हुई एक छोटी सी पुष्पवाटिका है जिसमें बड़ी सुगन्धित प्रकार के देशी गुलाब आदि के पुष्प लगे हुए हैं। इस मकान में दहलीज़ से दूसरी ओर के कमरे में बैठने का कमरा बना हुआ है इस कमरे में एक ओर बाइसिकल रखा हुआ है जिसके दोनों पहियों में पूरी हवा भरी हुई है, मेज़ पर एक ५० सिगरेट का बन्द टिन रखा हुआ है। खाद्य भण्डार में कुछ मिट्टी के मटकों में अनाज भी भरा हुआ रखा है, भोजनालय में तो एक चुल्हा रोटी बनाने के लिये मौजूद ही है परन्तु उसके बाहर खुले चौक में भी एक लोहे की अङ्गीठी रखी हुई है जो कभी-कभी जल गरम करने के काम में आती है।

वायु लचलची और वितरणशील होने के कारण भूस्थल पर अपने ऊपर वाली (वायु ही की) तहों से दबी हुई होती है इससे इसमें साधारणतः एक चटाई इञ्च में १५ पौण्ड वज़न है यदि किसी स्थान पर इस वायु मण्डल में किसी कृत्रिम साधन से ऊपर से वायु किसी ऊँचाई तक थोड़ी देर के लिये निकाल दी जावे या वेगरी कर दी जावे तो चारों ओर से भूस्थल की तह से वायु आकर्षित होकर शीघ्र ही उस स्थान में घुस जायेगी। जहाँ पर उष्णता उत्पन्न की जायेगी वहाँ की भूस्थल की वायु हलकी होकर ऊपर की ओर उठना आरम्भ कर देगी और जहाँ पर अधिक शीतता उत्पन्न की जायेगी वहाँ पर वायु का घनित्व अधिक होने के कारण ऊपर की वायु नीचे की ओर बहने लगेगी। सारांश यह है कि इस छोटे से मकान ही के विभिन्न भागों में भिन्न २ भेदों की वायु विराजमान है जिसको हम आगे बतलाते हैं। अदृश्य पदार्थ होने के कारण इसके भेदों का अन्तर का अनुभव नहीं होता और वायु के

अदृश्य होने के कारण ही इसके शीघ्र स्वच्छ रखने के कार्य में अनेक बाधाएँ आती हैं। न स्वच्छ वायु दीखती है न दूषित वायु और न ही साधारण वायु केवल इसका बोध उसके कार्यों द्वारा ही किया जाता है। प्रथम श्रेणी के वायु के भेद जो घनित्व के आधार पर होते हैं उनमें से अधिक घनित्व वाली वायु बाइसिकल के पहियों के भीतर है, वायु शून्यता सिगरेट के टीन के भीतर है जो कृत्रिम साधनों से उत्पन्न की हुई होती है और साधारण घनित्व जो १५ पौण्ड प्रति इञ्च का होता है उस घनित्व वाली वायु साधारणतः सब मकानों के भीतर विद्यमान है। द्वितीय श्रेणी में वाष्प पूर्णतः पर आधारित वायु के भेद एक तो भोजनालय में अग्नि के चूल्हे के नजदीक वाली वायु में मिलेंगे जिसमें जल वाष्प केवल एक न्यून अंश में ही मिलेगी और इसके प्रतिकूल जलगृह की वायु जल वाष्प से अधिक अंशों में परिपूर्ण मिलेगी। तृतीय श्रेणी में तापक्रम पर आधारित वायु के भेद भी चूल्हे के नजदीक वाली वायु और जलगृह के नजदीक वाली वायु में मिलेंगे। चूल्हे के नजदीक वाली वायु उष्णता लिये हुये होगी और जलगृह की वायु पर्याप्त शीतता लिये हुये होगी और इन दोनों स्थानों की वायु की तुलना में मकान के **अन्य स्थानों की वायु मध्यम तापक्रम लिये हुए हागी**। चौथी श्रेणी के भेद जो केवल स्वच्छता पर आधारित हैं उन भेदों वाली वायु वह वायु है जिसमें गन्दे और दूषित पदार्थों के सूक्ष्म कण उन गन्दे और दूषित पदार्थों से वायु के सम्पर्क से सम्मिलित हो जाते हैं और उस वायु में उड़ने लगते हैं और उसी वायु के द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाकर वहाँ के वातावरण (वायु और जल) को भी दूषित कर देते हैं। इस चौथी श्रेणी में तो सुगन्धित पदार्थों के कणों से परिपूर्ण हवन की वायु भी आ जाती है क्योंकि इस चौथी श्रेणी के भेदों का आश्रय यह है कि वह वायु जिसमें ⅕ ऑक्सीजन और ⅘ नाइट्रोजन के अतिरिक्त स्वास्थनाशक या स्वास्थवर्द्धक

पदार्थों के कण जो पृथ्वी, जल, वायु तीनों में से हो सकते हैं सम्मिलित हों ।

इस चौथी श्रेणी के भेदों वाली वायु हजारों प्रकार की होती है जिनमें विभिन्न प्रकार के गन्दे और दूषित पदार्थों से उत्पन्न हुए अनेक प्रकार के विष मौजूद होते हैं। जब पार्थिव (वनास्पतिक) पदार्थ जल, वायु और अग्नि के समकालीन सम्पर्क में आने से सड़ते हैं तो उनमें से अनेक प्रकार की दूषित गैसें (द्रव्यिक पदार्थ) उत्पन्न होकर निकलने लगती हैं और उस उत्पत्ति के स्थान पर से निकल कर वहाँ की वायु में मिल जाती हैं। ऐसी वायु इस मकान में पखाने में सब से अधिक दूषित प्रकार की मिलेगी उससे थोड़ी कम दूषित मूत्रस्थान पर और उस से कम नालियों के ऊपर मिलेगी। इन स्थानों के अतिरिक्त अनाज भण्डार में भी यह दूषित वायु अनाज के बन्द मटकों आदि में मिलेंगी। वायु कितने अंश में दूषित है और किन-किन विषों से दूषित है इसका विवरण यहाँ पर नहीं किया जा सकता बस इतना बता देना ही ठीक समझते हैं कि विष अनेक प्रकार के होते हैं जो भूस्थल पर नित्यप्रति और विशेषतः मनुष्यों और उनके पालतू जानवरों की आरोग्य नियमों के विरुद्ध स्वतन्त्र क्रियाओं द्वारा उत्पन्न होते रहते हैं। मनुष्यों के निवास स्थान और बसी हुई बस्तियें इन विषों की उत्पत्ति के मुख्य स्थान हैं। यहाँ पर ही एक परमावश्यक बात ध्यान में रख लेनी चाहिये कि प्रकृति ने इन हजारों प्रकार के विषों की निवृत्ति करने के हितार्थ हजारों ही प्रकार के (विभिन्न आकृति और बनावट वाले) कीटाणु (आरोग्यता फ़ौज़) उत्पन्न किये हैं जो पृथ्वी, जल, वायु तीनों प्रकार के क्षेत्रों में अपना कार्य करके इन विभिन्न प्रकार के विषों को नष्ट कर देते हैं। जहाँ-जहाँ और जब २ मनुष्य इन मनुष्यों और उसके पालतू जानवरों के उत्पन्न किये हुये विषों की निवृत्ति अपने कृत्रिम उपायों द्वारा करने में विलम्ब या आनाकानी करता है वहाँ २ और तब २ तुरन्त ही प्रकृति अपने अटल नियनानुसार अपनी आरोग्य फ़ौज के सिपाही यानी विभिन्न

प्रकार के कीटाणुओं को वहाँ उत्पन्न कर देती है या दूसरे स्थानों से भेज देती है जिनके द्वारा उन विषों की निवृत्ति का कार्य तुरन्त आरम्भ हो जाता है जैसा पीछे कई बार बताया जा चुका है यह सिपाही हर प्रकार के विषनाशक सामग्री और औज़ारों से लैस होते हैं इनको कोई सामग्री अपने विषनाशक कार्य की पूर्ति के लिये कहीं से लानी नहीं पड़ती। यह सिपाही अपने कार्य को अधूरा नहीं छोड़ते जबतक केवल एक ऐसी अवस्था न पैदा कर दी जावे जिससे कि भूला हुआ मनुष्य अपने भीतर जाग्रति उत्पन्न करके उन विषों की निवृत्ति करने के कार्य को फिर अपने हाथ में न ले ले।

यदि ईश्वर ने हमारी सहायता की तो आगे चलकर इस पुस्तक के तृतीय भाग में इन विषों के विभिन्न प्रकारों और इनकी निवृत्ति करने वाले कीटाणुओं के विषय में थोड़ी और मनोरञ्जक रहस्यों की बातें बताने का प्रयत्न करेंगे। यहाँ केवल इस विषय में अपने अन्वेषणों से प्राप्त हुई कुछ नवीन बातों का उल्लेख करते हैं कि मक्खी सर्व प्रकार के गन्दे और दूषित विषों को नष्ट करती है, मच्छर वायु में से हलके विषों को जो जल की अधिकता के कारण वायु में संचार कर जाते हैं उनको नष्ट करता है जूँ मनुष्य के शरीर से निकले हुए पसीने के सड़ने पर जो दूषित मल बन जाता है उसकी निवृत्ति करती है, बर्र चिकने-पदार्थों के सड़ने से उत्पन्न हुए मल की निवृत्ति करती है और ततैया मिठाई के सड़ने से जो मल बनते हैं उनकी निवृत्ति करता है। यदि वैज्ञानिक महोदय निस्पक्षता से इन प्राकृतिक फ़ौज़ के कीटाणुओं के विभिन्न स्वच्छता सम्बन्धी क्रियाओं का निरीक्षण करें तो उनको इन प्राकृतिक नियमों की सत्यता की हजारों बातों का स्वयं ज्ञान हो जावेगा। आरोग्य विज्ञान में चौथी श्रेणी के वायु के भेदों का पूर्णतः ज्ञान होना परमावश्यक है। इसके अतिरिक्त प्रथम श्रेणी के भेदों में वायु शून्यता का पूर्ण ज्ञान होना भी आवश्यक है क्योंकि जैसा पहिले बताया जा चुका है, वायु शून्यता में रखने से कोई भी पार्थिव

(वनास्पतिक) पदार्थ सुरक्षित रखा जा सकता है क्योंकि उस पदार्थ का हमारे सिद्धान्तानुकूल वायु के निकल जाने से समकालीन सम्पर्क टूट जाता है। वैसे तो गंदे और दूषित पदार्थों के सम्पर्क से जो विषवायु में समावेश हो जाते हैं उनका मनुष्यों के तत्कालीन परीक्षा करने के साधन तीन प्रकार के यहाँ बतलाये जाते हैं जो वायु में तीन प्रकार की स्वास्थ नाशक अंश में स्थित्व को संबोधित करते हैं। यह तीन गैसें यह है। (१) कार्बनडाइऑक्साईड (२) सल्फेटड हाईड्रोजन (३) अमोनिया।

वायुमंडल में कार्बन डाईऑक्साइड की अधिकता में यदि थोड़ासा चूने का पानी बनाकर किसी कांच के गिलास में भरकर थोड़ी देर रक्खा जावेगा तो इस पानी के ऊपर एक प्रकार की पपड़ी जम जायगी। साधारण भूस्थल से छूते हुए वायुमंडल में यह गैस ·० २ प्रतिशत रहती है बड़े २ गुञ्जान शहरों की वायु में ·० ६ प्रतिशत तक होजाती है इससे अधिक होना स्वास्थ नाशक है।

सल्फेटड हाईड्रोजन का वायु में थोड़ी से अंश में भी होना स्वास्थनाशक होता है। इसकी परीक्षार्थ यदि एक बोतल जल में आधी छटांक साफ काशग़री सुफेदा मिलाकर इस विलियन से सुफेद स्याही सोख की कतरनों को तर करके साफ वायुमंडल में सुखा दिया जावे। जब यह स्याही सोख की कतरने दूषित वायु में रखदी जावेंगी तो यदि उस दूषित वायु में सल्फेटड हाईड्रोजन होगी तो इन कतरनों का रंग स्याह पड़ जायगा।

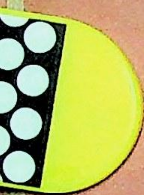
अमोनिया का भी वायु में थोड़ी से अंश में भी होना स्वास्थ नाशक है इसकी परीक्षार्थ यदि एक बन्द शीशी में नमक का तेजाब लेजाकर जहाँ की वायु की परीक्षा करनी हो वहाँ जाकर उस शीशी की डाट खोल दी जावेगी तो यदि यहाँ की वायु में अमोनिया मौजूद होगा तो शीशी के ऊपर धुवां बनकर उड़ता दिखाई पड़ेगा।

स्वस्थ मनुष्य के नासिका की सूंघने की शक्ति को वायु के विषों का बड़ी जल्दी बोध हो जाता है। यहाँ पर बड़े स्पष्ट और दृढ़ शब्दों में इतना एक बार फिर बतलाकर इस द्वितीय भाग के विवरण को समाप्त करते है कि वायु को अधिक विषाक्त होने से भी प्रकृति के नियमानुकूल विभिन्न प्रकार के उड़ने वाले कीटाणु बचाते रहते हैं अन्यथा वायु मनुष्यों और इनके पालतू जानवरों के उत्पन्न हुये विषों से इतनी विषाक्त हो जाया करती कि इसमें एक मिनट भी रहना सम्भव नहीं था।

(समाप्त)



पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी



यालय,



पुस्तकालय

SAMPLE STOCK VERIFICATION
1988
VERIFIED BY..

Entered in Database
Signature with Date

पुस्तकालय, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय,
हरिद्वार।

